VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/ 57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2018 TO 31.12.2020)

६७, ५

अगस्त २०१८

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर-146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-244750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. कर्णसिंह 'वाग्योगी'	गीता का 'कृपया' शब्द	लेख	२
स्वामी विवेकानंद सरस्वती	शिव मम जीवन शिव कर दे	कविता	४
डॉ. किशनाराम बिश्नोई	गुरु जम्भेश्वर की दृष्टि में धार्मिक अवधारणा	लेख	५
डॉ. अजीत कुमार शास्त्री	समग्र पर्यावरणीय रूपान्तरणहेतुः आत्मानुशासन की भूमिका	लेख	११
डॉ. रामप्रकाश शर्मा	संत-शिरोमणि दादूदयाल	लेख	१५
डॉ. सुरेन्द्र पाल	काश्मीर शैवदर्शन में 'वाक्' की अवधारणा	लेख	१९
प्रो. रणजीत सिंह	श्रीगुरु अंगद देव जी: जीवनदर्शन	लेख	२२
डॉ. राजेश कुमार शुक्ल	भारतीय-साहित्य का मूल-संवेदना	लेख	२५
श्री सीताराम गुप्ता	समाधिस्थ बाबाजी	कविता	२९
डॉ. रमेश कुमारी	युगप्रवर्तक सन्त कबीर	लेख	३१
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	गुरु गुणों की खान	लेख	३४
सुश्री आशा रानी	२१वीं सदी की सशक्त नारी	लेख	३७
श्री जितेन्द्र कौशिक	वैदिक देवता- 'मरुत्' (ऋग्वैदिक प्रथम मण्डल के विशेष सन्दर्भ में)	लेख	४१
सुश्री टीना वैद	गंगा का धार्मिक वैशिष्ट्य	लेख	४३
	संस्थान-समाचार		४६
	विविध-समाचार		४८

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६७ होश्यारपुर, श्रावण २०७५; अगस्त २०१८ संख्या ५

द्रुपदाद् इव मुमुचानः
स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं
विश्वे शुम्भन्तु मैनसः।।

(अथर्व. ६.११५.३)

(देवप्रसादन द्वारा) (विश्वे) सब (देवता) (एनसः)पाप से (निर्मुक्त करके) (मा) मुझे (शुम्भन्तु) प्रकाशयुक्त कर दें। (मेरी वैसी ही स्थिति हो जाय) जैसी (द्रुपदात्) खूंटे से (मुमुचानः) छूट चुके (पशु की) होती है, जैसी (स्विन्नः) पसीना ले कर अथवा (स्नात्वा) स्नान करके (मलात्) मल से (मुक्त हो चुके की होती है) और जैसी (पवित्रेण) पोणे से (पूतं) पुणे गए (आज्यं) घी की होती है।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम्।
दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम्।।

(योगशिखोपनिषद्, ५.२)

गीता का 'कृपया' शब्द

– डॉ. कर्णसिंह 'वाग्योगी'

'श्रीमद्भगवद्गीता' के प्रथम अध्याय के २८वें श्लोक में 'कृपया' शब्द का प्रयोग हुआ है। गीता का यह अपना विशेष शब्द है। अन्य किसी भी स्थल पर कृपया शब्द का प्रयोग इस रूप में हमें देखने को नहीं मिलता है। सामान्यतया शिष्टाचार में जिस कृपया शब्द का प्रयोग हम देखते हैं; वह 'कृपा' शब्द का तृतीया विभक्ति का एकवचन है, जैसे 'कृपया' ध्यान से पढ़िये आदि वाक्यों में। संजय ने इसका प्रयोग अर्जुन को बताते हुए किया है 'कृपया परयाविष्ट:' अर्थात् परया (अत्यधिक) कृपया (कृपा से) आविष्ट (घिरा हुआ)। यहां कृपा शब्द का अर्थ कातरता या घबराहट से है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' के प्रथम अध्याय में गीताकार व्यास जी ने यह बात भली प्रकार से स्पष्ट कर दी है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह उपदेश क्यों दिया। कौरवों पाण्डवों की सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं और कुरुक्षेत्र का महायुद्ध होने ही वाला है। बस, थोड़ा ही समय है। तभी अर्जुन के कहने पर उस का रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन से कहा कि 'तुझे जिनसे युद्ध करना है, उन भीष्म, द्रोण आदि को देख लें।' तब जैसे ही अर्जुन ने दोनों सेनाओं की ओर दृष्टि डाली तो उसने देखा कि वहां तो सभी उसके अपने परिजन ही हैं। साथ ही उसके गुरुजन भी हैं।

युद्ध का मैदान, लड़ने-मरने को तैयार आमने-सामने खड़े शत्रु बने परिजन, यह सब देखकर अकस्मात् होने वाले महाविनाश के साक्षात्कार से महायोद्धा अर्जुन भी भयग्रस्त हो गया। ऐसा नहीं है कि अर्जुन पहली बार युद्ध करने गया था किन्तु अकस्मात् होने वाली मानव-स्वभाव की दुर्बलता के कारण अर्जुन की ऐसी दशा हो गयी कि न तो वह युद्ध कर सकता था और न वहां से भाग सकता था। कर्तव्यकर्म का क्षत्रियत्व का आदर्श और परिजन-विनाश की मोह की विवशता इन दोनों के बीच फंसे हुए अर्जुन को ही संजय ने कृपयाविष्ट कहा है। 'गीता-रहस्य' नामक अपने ग्रन्थ में लोकमान्य तिलक जी ने कृपयाविष्ट अर्जुन की तुलना तेजगति से आती हुई दो ट्रेनों के बीच में फँसे व्यक्ति से की है। इस यहां फँसे हुए व्यक्ति के साथ ही, उसके वहां से न हट पाने की विवशता को भी जोड़ रहे हैं। वस्तुत: कृपया शब्द में युद्ध न कर पाने और वहां से भाग भी न पाने की विवशता- ये दोनों ही अर्थ हैं। संक्षेप में हम कृपया शब्द का अर्थ किसी दूसरे समानार्थी शब्द से न करके भय या घबराहट ही कर सकते हैं।

जैसा हमने ऊपर बतलाया है, प्रथम अध्याय के २८वें श्लोक में संजय ने अर्जुन को कृपयाविष्ट

कहा है। उसके बाद के श्लोकों २९वें और ३०वें में स्वयं अर्जुन अपनी शारीरिक और मानसिक दशा का वर्णन करता है। अर्थात् कृपयाविष्ट अर्जुन कहता है कि:-

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोमि अवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

अर्थात् मेरा शरीर ढीला पड़ गया है, और मेरा मुख सूख गया है (मैं बोल नहीं सकता हूँ), मेरा शरीर काँप रहा है और मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं, (जैसा कि भावावेश में होता है), मेरा गाण्डीव धनुष मेरे हाथ से खिसक रहा है, मेरा शरीर जल रहा है और मैं खड़ा भी नहीं रह पा रहा हूँ (नर्वस होने के कारण) और मुझे चक्कर आ रहा है।

ये सब लक्षण कृपयाविष्ट अर्जुन के हैं, जो बतलाते हैं कि वह भयग्रस्त हो गया है। इन लक्षणों में एक भी लक्षण ऐसा नहीं है, जो किसी करुणा करने वाले या मोहग्रस्त व्यक्ति में मिलते हों।

इतना ही नहीं, दूसरे अध्याय के प्रारम्भिक श्लोक में ही संजय फिर कहता है कि; 'तं तथा कृपयाविष्टं' अर्थात् उस प्रकार से कृपयाविष्ट अर्जुन को कृष्ण समझाते हैं कि तुम्हें यह दुर्बुद्धि कहां से आ गयी और तुम नपुंसक मत बनो और हे अर्जुन तुम अपने हृदय की तुच्छ दुर्बलता को छोड़ दो।

श्रीकृष्ण के समझाने के शब्दों पर भी यदि ध्यान दिया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि यह उपदेश किसी भयग्रस्त व्यक्ति के लिए ही उचित लगता है, अन्य किसी के लिए नहीं।

वस्तुतः, गीता के भाष्यकारों में आदि-भाष्यकार जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने अद्वैतवादी होने के कारण, प्रारम्भ से ही गीता की वैराग्य- परक व्याख्या की ऐसी परम्परा डाली कि बाद के सभी व्याख्याकार अर्जुन को मोहग्रस्त मानते रहे। ऐसे किसी भी व्याख्याकार ने गीता के प्रथम अध्याय के सीदन्ति मम गात्राणि आदि श्लोकों पर ध्यान ही नहीं दिया। इसी का परिणाम है कि अभी तक भी 'कृपया' शब्द का सही अर्थ हम नहीं लगा पाये। अधिक क्या कहें, इसी लकीर के फकीर बनने के चक्कर में हम गीता के उपदेश के मर्म को भी समझ नहीं पाये। आज तक भी हम गीता के भयनाशक उपदेश को मोहनाशक मानकर जीवन में उसका पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

– रूपनेत्रालय, शिवाजी मार्ग, मेरठ-२५०००१।

शिव मम जीवन शिव कर दे

– स्वामी विवेकानंद सरस्वती

शिवे मम जीवन शिव कर दे।।

शिव मम जीवन शिव कर दे।।

नूतन वर्ष हर्ष से पूरित मंगलमय कर दे।

जग के हर मानव के उर में वेद ज्ञान भर दे।।

मिटे अंधेरा, होय सवेरा, निर्मल मन कर दे।

घोर तमिस्रा आर्य राष्ट्र की छिन्न-भिन्न कर दे।।

भारत को भा-रत कर दे तू मोह निशा हर ले।।

नवप्रभात से जीवन कलिका तू विकसित कर दे।।

नव उल्लास विश्व में व्यापे, तन मन सब पुलकित कर दे।

क्लैव्य भाव दु:ख दैन्य मिटाकर शौर्य ओज भर दे।।

भय विह्वल हर मानव उर में निर्भयता भर दे।

संसृति का संत्रास मिटाकर लोक पूर्ण आलोकित कर दे।।

जीवन में नव ज्योति जगाकर अंधकार हर ले।

वेदमंत्र की पावन ध्वनि से शोक मुक्त कर दे।।

विकृति से हम मुक्त सदा हों संस्कृति से संयुक्त सदा हों।

ऐसा दिव्य भाव प्रलयंकर तन मन में भर दे।।

गरल पान कर मानवता का सुधा-सिक्त वसुधा कर दे।।

शांति, सरलता, शुचिता, मुदिता जन-जन में भर दे।।

शतपथ का सन्मार्ग दिखाकर सकल विघ्न हर ले।

संस्कृति का उत्थान करें हम तू ऐसा वर दे।।

– कुलाधिपति, गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला-झाल, मेरठ।

गुरु जम्भेश्वर की दृष्टि में धार्मिक अवधारणा

– डॉ. किशनाराम बिश्नोई

बिश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक भगवान् जम्भेश्वर विष्णु के पूर्ण अवतार माने जाते हैं। उनकी वाणी 'सबदवाणी' के नाम से विख्यात है। सबदवाणी का अपर नाम जम्भवाणी और गुरुवाणी तथा वेदवाणी भी हैं। जम्भवाणी का प्रत्येक 'सबद' मुक्तक कविता की भांति एक स्वतंत्र रचना है। जो समय-समय पर उन्होंने अनेक लोगों के प्रति उनकी शंका निवारण, जिज्ञासा समाधान, प्रश्नोत्तर और प्रतिबोध कराने के लिए कही थी।

गुरु जम्भेश्वर एवं उनके शिष्यों-प्रशिष्यों की विस्तृत और समृद्ध साहित्य-परम्परा है। जिनका राजस्थानी भाषा और साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान है। उनके प्रमुख शिष्यों में वील्होजी, केसौजी, सुरजनजी, ऊदोजी, मुकनोजी, गोकलजी, परमानन्द वणियाल, सेवादास, अल्लूजी कविया, कोल्हजी चारण इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त जाम्भाणी साहित्यकारों की कुल १२६ ज्ञात संख्या है, जिनको जाम्भाणी संत-परम्परा के नाम से जाना जाता है। जाम्भाणी संत-परम्परा का निर्गुण भक्ति परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। जाम्भाणी साहित्य में निर्गुण विष्णु और गुरु जम्भेश्वर को एक ही स्वरूप में माना जाता है। इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने परमतत्व को अनेक रूपों, विविध आयामों, अनेक नामों में उसकी उपासना, स्तुति, नामस्मरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। कभी ईश्वर को सगुण रूप में अंगीकार किया है तो कभी निर्गुण, निराकार के सन्दर्भ में उसकी उपासना करने का सदुपदेश दिया है। भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में सगुण और निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्त आदि अनेक धाराओं में एक आदिकालीन परम्परा चली आ रही है। निर्गुण विचारधारा के अनुसार ईश्वर निराकार है, जिसका वर्णन लौकिक दृष्टांतों द्वारा असंभव है। वह रूपाकार रहित और लौकिक गुणों से परे है, परन्तु सगुणवादी विचारधारा के अनुसार ईश्वर साकार रूप में अवतरित होता है। वह भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न अवतार लेता है। अवतार लेकर वह आसुरीवृत्ति वाले लोगों का विनाश करता है तथा सात्विक लोगों का उद्धार करता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी अवधारणा के विषय में बतलाया है कि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[१]

जब-जब धर्म की क्षति होती है तब पुनः ईश्वर अवतरित होकर धर्म की स्थापना करता है। तुलसीकृत रामचरितमानस में भी परमसत्ता के विषय में यही उद्‌गार व्यक्त किए गए हैं-

जब जब होई धरम कै हानि बाढहिं असुर

१. गीता ४/७

अधम अभिमानी। करहि अनीति जाई नहीं बरनी, सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
असुर मारि थापहि सुरन्द राखहि जिन श्रुति सेतु।
जग बिस्तार, बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।[३]

यक्षों, राक्षसों और आसुरीवृत्ति का प्रभाव पृथ्वी पर बढ़ जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सात्विक व धर्म-परायण लोगों की रक्षा करने के लिए ईश्वर साक्षात् मनुष्य के स्वरूप में अवतरित होता है तथा धर्म का नवीन रूप से पुनरुत्थान करता है। सिक्खमत के पवित्र दशम ग्रन्थ में यह बतलाया गया है कि पृथ्वी पर अनेक प्रकार के अनिष्टकारी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, तब ईश्वर देह धारण करके अपना विस्तार करता है-

जब जब होत अनिस्ट अपारा, तब तब देह धरत करतारा।
आपन रूप अनंतन धरही, आपन मध्यकालीन पुनः करही।।[३]

मूल रूप से सभी धर्मग्रंथों में ईश्वर के सगुण रूप के विषय में अनेक प्रकार के दृष्टांत मिल जाते हैं। रूप और अरूप, सगुण और निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्त, लौकिक और पारलौकिक सब एक ही परमसत्ता के विभिन्न नाम हैं, इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने इन सभी विशेषणों का समन्वय करके सगुणोन्मुखी निर्गुण ईश्वरीय रूप को व्यक्त किया है-

रूप अरूप रमू प्यंड ब्रह्मंडयै;
घटि घटि अघट रहायौ।।[४]

स्वयंभू रूप में गुरु जम्भेश्वर स्वयं आकार-निराकार, व्यक्त और अव्यक्त, सीमा और असीम सभी स्वरूपों, सृष्टि के प्रत्येक कण में सर्वत्र विद्यमान हैं। वे बताते हैं कि मैं अनन्त युगों में परमसत्ता के रूप में सभी जगह एक साथ व्याप्त हूं। मेरी काल सीमा असीम है। मेरे माता-पिता आदि भी नहीं हैं-

अनन्त जुगां मां अमर भणीजूं।
ना मेरे पिता न मायौ।।[५]

भौतिक रूप से माता-पिता होते हुए अलौकिक रूप से उनको स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनके उत्पन्न होने के विषय में विधाता ही जानता है। गुरु जम्भेश्वर स्वयं परमसत्ता विष्णु का ही प्रतिनिधित्व करते हैं जो सर्वत्र अगम हैं, अलेख हैं, जो इन्द्रियातीत और अदृश्यमान हैं।

ना मेरे माया न छाया रूप न रेखा
बाहरि भीतरि अगम अलेखा।।[६]

उनका शरीर अलौकिक रूप में अवस्थित होने के कारण भौतिक शरीर की प्रतिछाया नहीं पड़ती थी। उनके भौतिक शरीर की न माया थी, न छाया और न रेखा। अतः वे अपने स्वस्वरूप में द्वैत और अद्वैत दोनों से परे थे। माया के प्रपंच से ऊपर उठने के उपरान्त उनका शरीर ब्रह्ममय हो गया था। इसलिए ब्रह्ममय की परिभाषा अवधूत गीता में इस प्रकार दी गई है-

अद्वैत रूप मखिलं हि कथं वदामि।।

×× ×× ×× ×× ×× ×× ×× ×××

---

२. रामचरितमानस कल्याण पत्रिका, भक्तिविशेषांक, पृ. ८१३. ३. दशमग्रंथ साहिब, पृ. ८७५
४. जम्भगीता, पृ. ६६ ५. वही, पृ.६६ ६. वही, पृ. ६६

स्वरूपरूपं परमाथयतत्वम्।।[७]

वह ब्रह्म अतीन्द्रिय होते हुए भी परम संरक्षण कर्त्ता, रक्षक, परम बलवान्, परम दयालु, परम कारुणिक तथा उसके लिए समस्त मानव बराबर हैं। वह अतिशय अस्थूल, अशरीरी हैं। उसके लिए सभी जीव बराबर हैं। सभी में एक ही आत्मा का निवास है। आत्मस्वरूप में वह सबमें अन्तर्निहित है, वह असीम और अलौकिक है। इसलिए गुरु जम्भेश्वर की धारणा है कि उस असीम परमतत्व को पूर्ण रूप से समझना है। वह सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और अनन्त है। उसको स्थानविशेष तथा गुणविशेष की परिधि में समीचीन नहीं किया जा सकता।

गुरु जम्भेश्वर निर्गुण काव्यधारा के अध्यात्मपथ के पथिक थे। ब्रह्मानुभूति के द्वारा अगम-अलेख की भावव्यंजना करना उनका लक्ष्य था। अपनी इस सर्वस्व चेतना से ईश्वर के स्वरूप को लेकर समाज में अनेक मत और विविध धाराएं परिव्याप्त थीं। लोग अपने-अपने धर्मानुसार या मतानुसार ईश्वर के विषय में कथन कर रहे थे। अपने-अपने आराध्य या ईष्ट की सर्वश्रेष्ठता घोषित कर रहे थे। गुरु जम्भेश्वर ने ऐसी प्रतिकूल स्थिति का परीक्षण करके ईश्वर-विषयक इस स्थिति को सन्तुलित, व्यवस्थित और नियोजित करके जनसामान्य को समतावादी बनवाया। उन्होंने बड़ी सहजता से एकेश्वरवाद और अनेकेश्वरवाद के बीच मध्यमार्ग को अपनाकर सहिष्णुता का परिचय दिया। उनको, कुरान, पुराण, पोथी और पंडित, मुल्ला और मौलवी कैसे-कैसे शब्दाकारित करते हैं। अपने निहित स्वार्थ के लिए समाज को भ्रष्ट तथा विवेक विनष्ट करके अपने स्वार्थ का सम्पोषण करते हैं।

गुरु जम्भेश्वर ने सम्पूर्ण मानवता को एक राह पर लाने के लिए तथा विभिन्न धार्मिक मतों, पंथों में एकता स्थापित करने के लिए ऐसे निर्गुण विष्णु की संकल्पना प्रदान की जो सभी जातियों एवं धर्मावलम्बियों को स्वीकार हो। उन्होंने वैदिककालीन व्यापक विष्णु के नाम को प्रस्तावित किया। उनका विष्णु तीनों लोकों व सात पातालों वाला है। वह विष्णु सभी युगों में अवतरित होकर धर्म की स्थापना करता है तथा अधर्मियों को विनष्ट करता है। दृष्टि और दर्शन से अलक्ष्य है, वाणी और व्यंजना से ऊपर है। वह तो केवल ध्यानगम्य और अनुभवगम्य है, फिर भी वह नाना रूपों वाला है, वही राम और वही अल्लाह और वही भगवान् हैं। उसी परमसत्ता से सभी आत्माएं निस्सृत हुई हैं। सृष्टि के समस्त जीवों में वही एक तत्त्व नानारूपों में विद्यमान हैं, इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने ऐसे परमतत्व के माध्यम से समग्र समाज और राष्ट्र को यह ज्ञानोपदेश दिया। सभी जातियों, धर्मों व सम्प्रदायों का ईश्वर एक है, उनके नाम पर साम्प्रदायिक विद्वेष, अलगाव या पृथकृता करना अज्ञानता का सूचक है।

गुरु जम्भेश्वर ने सामाजिक विद्वेष,

---

७. अवधूतगीता, पृ. १/५

सामाजिक संघर्ष तथा सामाजिक भेदभाव का कारण ईश्वर के स्वरूप को विभिन्न रूपों में विभाजित करके उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत करके विभिन्न जातियों, वर्गों में बांट देता है यदि ईश्वर के सही स्वरूप को भलीभांति समझ लिया जाए तो सभी समस्याएं स्वत: समाप्त हो जाएंगी। चूँकि लोग ईश्वर को नाना रूपों में रूपायित करते हैं, नाना धर्मों से समन्वित करते हैं, नाना-साधनों से भजते हैं, इसलिए यह नानात्व की स्थिति समाज में विभिन्न प्रकार की नाना बुद्धि को उपजाती है और नाना बुद्धि अनेक भेदों, विविधरूपों तथा विपरीत परिस्थितियों को उत्पन्न करती है। वस्तुत: यही अनेकता अनेक भेदभावों को, अनेक मतों, पंथों, अनेक दृष्टियों को जन्म देती है। व्यक्ति नानात्व के चक्कर में फंसकर उसमें आसक्त होकर जीवन के मूलभाव को विस्मृत कर बैठता है। वह अपनी सम्पूर्ण चेतना बाह्य-क्रिया व्यापारों में केन्द्रित कर देता है और बाह्याडम्बरों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता के साक्षात्कार की अभिलाषा करता है, परन्तु यह अभिलाषा एक मायावी प्रपंच है, इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने बाह्याचारों के स्थान पर वास्तविक परमतत्व को परखने, समझने तथा जीवनव्यवहार में अपनाने की प्रेरणा दी है। बाह्याडम्बरों, पाखंडों तथा मिथ्याचारों में पड़कर मनुष्य अपनी आत्मोन्नति नहीं कर सकता है। वास्तविक तीर्थाटन मनुष्य के हृदय में है, इसके लिए बाहर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जहां नाना उपासना प्रणालियां मानव में भेद उत्पन्न करती हैं वही माया नर और नारायण में विभेद उत्पन्न करती है, वह ईश्वर की समीपता प्राप्त नहीं होने देती है। माया मोहिनी, कंचना कामिनी की भांति जीव को भ्रमित करती रहती है जो मनुष्य गुरु की शरण में पहुंच जाता है, उसकी कृपा का सम्बल प्राप्त कर भगवान् को आराधता है, उसके मार्ग में माया बाधा नहीं बनती। गुरु की इसी विलक्षणता का अनुभव करके भगवान् जम्भेश्वर ने सबद संख्या प्रथम में गुरु को ही ईश्वर माना है। गुरु अपनी वाणी द्वारा परमसत्ता के प्रति प्रणय और भाव उत्पन्न करता है, वहीं ईश्वरीय सत्ता की आनंदमयी प्रतीति कराता है। ज्ञान प्रणय वेदना की उत्पत्ति के पश्चात् साधक ईश्वर के प्रति परम-व्यापकता की अनुभूति कराता है, परम व्याकुलता अनवरत ध्यान के लिए उद्यत करती है और साधक इस उल्लासमयी भावना के ही परिणामत: ईश्वर की अनुभूति करता हुआ ब्रह्मानंद की प्राप्ति करता है। इस अवस्था को प्राप्त कर वह सांसारिक उलझनों, विद्वेषों, भेदभावों, आडम्बरों तथा एषणाओं से मुक्त हो जाता है। यह अवस्था साधना की सहजावस्था है। इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर ने अपनी वाणी के माध्यम से सर्वस्वीकार्य ब्रह्मोपासना को समस्त सुखों तथा मानवीय समुत्कर्ष का विधायक नियामक अंगीकार किया है।

गुरु जम्भेश्वर जी का मानसिक धरातल युगांतकारी चेतना से प्रोज्ज्वल व प्रमुदित था उनके युगांतकारी स्वरूप का व्यापक प्रभाव सामाजिक क्षेत्र पर पड़ा। गुरु जम्भेश्वर एक ऐसे समाज की

स्थापना करना चाहते थे जो वर्ग-विहीन तथा ऊँच-नीच की कलुषित भावना से रहित हो, जहां सभी लोगों के साथ समानता का व्यवहार हो, विषमतापूर्ण समाज उनको ग्राह्य नहीं था। उन्होंने सम्पूर्ण सामाजिक विषमताओं, कुव्यवस्थाओं और अन्ध-परम्पराओं से निकलने का मार्ग बतलाया है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर करके व्यवस्थाओं को सम्मान भी प्रदान किया है। उनकी दृष्टि में मानव सेवा और मानवधर्म विश्व का सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

गुरु जम्भेश्वर को सहजता में ही अपनी आस्था और निष्ठा थी वे स्वयं सहज जीवन के सहज पथिक थे। सहजता को वे जीवन की विविधताओं, व्यापक संदर्भों में स्वीकार करते थे। उनकी साधना का प्रबल पक्ष ही सहजता है। सहजता ही उनके इहलौकिक और पारलौकिक जीवन को प्राप्य थी। इसलिए उन्होंने गलदश्रु धारणाओं और मान्यताओं को कोई स्थान नहीं दिया है। उनका विश्वास था कि विषमतापूर्ण परम्पराओं और रूढ़ियों के अनुपालन, अनुगमन से कोई भी व्यक्ति और समाज उत्कर्षता को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी परिणाम को अभिव्यंजित करके गुरु जम्भेश्वर ने बाह्याचारों एवं बाह्याडम्बरों से दूर रहने को कहा है। उनकी निरर्थकता को प्रतिपादित करके परमतत्व को पहचानने की प्रेरणा दी।

गुरु जम्भेश्वर ने मध्यवर्गीय लोगों को ऊपर उठाने का अथक प्रयास किया है जो साधारण तथा कृषि और पशुपालन का व्यवसाय करते थे क्योंकि मध्यमवर्गीय परिवार सामंतवादी जातियों की शक्ति और सत्ता से अत्यंत आक्रान्त थे। उन्होंने एक तरफ तो दमन की दासता को समाप्त किया, दूसरी तरफ स्वस्थ तथा सर्वस्वीकार्य धर्म की स्थापना की उन्हें उपदेशक, गुरु एवं मानवधर्म व्याख्याता के रूप में अंगीकार किया है, क्योंकि गुरु जम्भेश्वर जी ने जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण मानवता के अभ्युदय की कामना की तथा इस कामना को साकार करने के लिए श्लाघनीय कार्य भी किया।

जम्भवाणी का मूल स्वर आचार मानसिक निर्मलता है। आन्तरिक शुचिता को संलक्ष्य करके सम्पूर्ण जम्भवाणी की रचना की है। उनका लक्ष्य बाह्य साधना के स्थान पर आन्तरिक साधना पर बल देना था। आन्तरिक साधना को सहजता प्रदान करने के लिए नैतिकता को श्रेष्ठ स्थान दिया। नैतिकता कोई सभ्यता नहीं है और न ही संस्कृति का स्वरूप, जो सीखकर या देखकर धारण किया जा सके। नैतिकता तो हमारी आन्तरिक चेतना है, यही चैतन्यधारा जम्भवाणी का मूल स्वर है।

सम्पूर्ण जम्भवाणी में सहज सच्चाई को सम्प्रेषित करने के लिए नैतिकता को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि कायिक और मानसिक मलिनता की स्थिति में ईश्वर का साक्षात्कार संभव नहीं है। जब तक तन और मन पवित्र प्राञ्जल नहीं होगा तब तक नारायण की निकटता प्राप्त नहीं हो पाएगी। इसी अनुभावना के कारण गुरु जम्भेश्वर ने सर्वत्र

शुचिता के सौन्दर्य को उजागर किया है। मानसिक मलिनता को समाप्त करने के लिए सत्संगति को उपयुक्त माना है। सत्संगति भी अच्छे व सात्विक विचार वालों की हो। सत्संगति में जो उपदेश दिया जाता है, जिससे अष्ट विकारों का विनाश होता है, साधक के अनेक दोष, विकार व अवगुण समाप्त हो जाते हैं।

गुरु जम्भेश्वर की नैतिक भावना सदाचार का संदेश देती हैं। जम्भवाणी में भावुक भक्तों की दीनता हीनता नहीं है, वरन् उनमें सहज आत्मविश्वास है, उनका आत्मविश्वास स्वस्थ लोक-निर्माण के लिए बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। मनुष्य के व्यक्तित्व में आत्मविश्वास ही संकल्पशील होता है, संकल्पशील मनुष्य के सामने कोई भी कार्य असंभव नहीं है, इसलिए आत्म-विश्वासी मनुष्य सुदृढ़ व्यक्तित्व का स्वामी होता है। अतः गुरु जम्भेश्वर का व्यक्तित्व समाज के लिए नियामक और प्रेरक सिद्ध हुआ है।

जम्भवाणी का मूल विषय अध्यात्म और आत्मोत्थान है। जम्भवाणी में समाज, संस्कृति, दर्शन आदि को अध्यात्म के पोषक व्यंजक तत्व में अंगीकार किया है। जम्भवाणी का उद्देश्य सम्पूर्ण मानवता का सांस्कृतिक अभ्युत्थान करना था। संस्कृति की व्याप्ति में उक्त तथ्यों का महत्व और भी ज्यादा है, क्योंकि संस्कृति अपने युग के लोकजीवन की मान्यताओं को अभिभूत करती है और साथ ही साथ समानान्तर लोकजीवन की मान्यताओं को शनैः-शनैः अपने में समाहित करती है। इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने अपनी वाणी में आध्यात्मिक चेतना के साथ उस मानवीय चेतना को भी अधिक बोधगम्य बनाने के लिए अनेक संदर्भों एवं आयामों की अवतारणा की है।

– गुरु जम्भेश्वर जी महाराज धार्मिक अध्ययन संस्थान,
गु. ज. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार-१२५००१

नायमफलो धर्मो नाधर्मोऽफलवानपि।
दृश्यन्तोऽपि हि विद्यानां फलानि तपसां तथा।

महा. वनपर्व, ३१.३१.

संसार में धर्म कभी भी निष्फल नहीं होता। अधर्म भी अपना फल दिए बिना नहीं रह सकता। निश्चित रूप से विद्या अर्थात् अच्छे काम तथा तप भी फल देने वाले होते हैं अर्थात् यह एक शाश्वत नियम है कि किसी भी प्रकार का कार्य कर्ता को उसका फल दिए बिना समाप्त नहीं होता।

समग्र पर्यावरणीय रूपान्तरणहेतुः आत्मानुशासन की भूमिका

– डॉ. अजीत कुमार शास्त्री

'धर्मो रक्षति रक्षितः' धर्म का शाब्दिक अर्थ 'धृ' धातु से धारण करना है। मनुष्य जिसे धारण करता है या जिसे अपने आचरण में लाता है। अर्थात् जिसको आचरण में लाने मात्र से मनुष्य अनुशासित हो जाता है। उसी धर्मरूपी अनुशासन को समग्र पर्यावरणीय रूपान्तरण के संदर्भ में समझना समय की मांग है। महाभारत के अनुसार 'धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजा' मानव-समाज धर्म अर्थात् अनुशासन पर आधारित है। 'धर्म' अर्थात् अनुशासन न रहने पर 'मानव' मानव नहीं रहता वह पिशाच बन जाता है। विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में धर्म शब्द का प्रयोग संसार को चलाने वाले नियम या अनुशासनपूर्ण जीवनशैली के अर्थ में किया गया है, जिसको आंगल भाषा में 'लॉ' कहा जाता है। संस्कृत में धर्म शब्द के अनेकों अर्थ हैं परन्तु वैश्विक-स्तर पर जो संकट मानवता के लिए आज व्याप्त हैं- उनके निराकरण के लिए आत्मानुशासनरूपी धर्म का पालन नितान्त आवश्यक हो गया है।

श्रेयसकार स एव धर्मशब्देनोच्यते

(मीमांसा-सूत्र १/२)

अर्थात् अनुशासन से सर्वत्र मंगल और कल्याण होता है। **यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः सः धर्मः** (वैशेषिकसूत्रम्- १/१/२) स्मृतिग्रन्थों के अनुसार धर्म का आशय कर्त्तव्यपालन, उचित और अनुचित का ध्यान तथा अनुशासित और संयमपूर्ण जीवनशैली है।

१. शारीरिक २. मानसिक
३. पारिवारिक ४. सामाजिक ५. नैतिक
६. धार्मिक एवं आत्मिक-चेतनता पूर्ण जीवन जीना, समझदारी, ईमानदारी, और बहादुरी से प्राकृतिक संरचना का अनुशासन से संयमित उपभोग करना ही धर्म कहलाता है। धर्म करने का नहीं धर्म जीने का नाम है। **आचारः परमो धर्मः** (वसिष्ठधर्मसूत्रम्-६/३) के अनुसार भी उत्तम आचार, विचार और व्यवहार ही श्रेष्ठ धर्म है। उत्तम आचार आत्मा का गुण है। आत्मानुशासन ही समग्र रूपान्तरण का आधार है।

आत्मानुशासन जीवन-जीने का प्रथम नियम है। आत्मानुशासन द्वारा मनुष्य के जीवन में सुव्यवस्था, अनुशासन, पूर्णता, पवित्रता, स्वच्छता निरामयता, शान्ति, आत्मीयता और भावात्मकता का संचार होता है। आत्मानुशासनरूपी धर्म द्वारा-

१. चिन्तन में उत्कृष्टता
२. चरित्र में आदर्शवादिता
३. व्यवहार में आत्मीयता
४. स्वभाव में शालीनता
५. सज्जनता और मनुष्यता के भाव हिलौरे लेने लग जाते हैं। उस समय मनुष्य सहजता से कह

उठता है- **प्रकृतिदेवो भव, वृक्षदेवोभव** क्योंकि, आत्मानुशासन व सदाचार एक परम धर्म है। आत्मानुशासनरूपी धर्म एक उच्चकोटि का योग है। आत्मानुशासनरूपी योग जीवन व प्रकृति के बीच एक विलक्षण समन्वय बनाता है-

१. विचारों की श्रेष्ठता

२. व्यवहारों की कुशलता

३. चरित्र की पवित्र चपलता के अन्दर एक शालीनता का भाव भर देती है जो मनुष्य को कभी भी प्रकृतिविरोधी कार्य नहीं करने देती। इसी संयम और अनुशासन के समन्वय को आत्मानुशासनरूपी योग कहा जाता है। (प्रज्ञा पुराण- २/२/१८-१९)

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्
आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'

(वसिष्ठधर्मसूत्रम्- ६/३-४)

स्वात्म की तरह प्राकृतिक घटकों के प्रति विचार रखना और उनकी सुरक्षा के लिए संयमित और अनुशासित रहना आवश्यक हो गया है। क्योंकि अनुशासनविहीन प्राणी को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः ध्यान रहे प्रकृति व धरती हमारी माँ है। माता से अनुशासनात्मक तथा देवत्व के भाव ग्रहण करना ही मानव का धर्म होना चाहिए। सच्चा धार्मिक और अनुशासित व्यक्ति धरा पर वही है जो चित्त से शान्त और समस्त प्राकृतिक घटकों के प्रति कोमल भावों से ओत-प्रोत हो।

जल जीवन है। वृक्ष प्राण।

ऋग्वेद भी युगों-युगों से यही उद्घोष करता आया है कि- **'मा भो औषधि हिंसीः'** वृक्षों को मत मारो, इनको मत काटो। अर्थात् जो वृक्षों को भी आत्मवत् समझ कर उनके प्रति कोमल व्यवहार अपनाता है। अपने समस्त अंगों पर मन, वाणी पर संयम का शासन चलाता है। जो सदा दयालु और हिंसा से कोसों दूर है। जो प्रकृति और पर्यावरणीय घटकों का मित्र है। ऐसा अनुशासित व्यक्ति ही समग्र पर्यावरणीय रूपान्तरणहेतु अपना धर्म निभा सकता है। (महाभारत-शान्तिपर्व-२६२/९)

विख्यात चिन्तक डॉ. राधाकृष्ण के अनुसार- धर्म का अभिप्राय कर्तव्य-पालन और उच्च मानवीय मूल्यों से है। धर्म का आशय हमेशा अनुशासन से लेना चाहिए। अनुशासन से पलायन नहीं प्यार करना चाहिए। यदि ऐसा संभव हुआ तो वैश्विक स्तर पर संव्याप्त पर्यावरणीय संकटों के प्रति काम करने की प्रेरणा पनपेगी।

पारिवारिक पर्यावरण और आत्मानुशासन-

पारिवारिक-विकृतियों को दूर करने का एकमात्र सूत्र है कि हम अपने सन्तोष का केन्द्र-बिन्दु बदलें। सन्तोष, शान्ति, प्रेम की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति करता है। पारिवारिक वातावरण में तनाव, मन-मुटाव, छींटाकशी, चिड़चिड़ापन, आलोचना, उपेक्षा, अनादर अवहेलना, अकेलापन, हेतु आत्मानुशासनरूपी योग को अपनाना आवश्यक है। पारिवारिक-पर्यावरण में प्रेम, आत्मीयता, भावुकता, स्वागत के भाव सदा

हों, निंदा आलोचना की जगह स्नेह सहानुभूति और प्रोत्साहनपूर्ण परामर्श होना चाहिए। सरीखे वातावरणहेतु काम, क्रोध, लोभ मोह की वृथा चाह को त्याग कर पारिवारिक पर्यावरणीय रूपान्तरण की राह पर आत्मानुशासनरूपी योग की साधना के माध्यम से बढते रहना चाहिए।

आर्थिक पर्यावरण व आत्मानुशासन-

आर्थिक-विकास भी भोग-युक्त नहीं, बल्कि योग-युक्त होना चाहिए। त्याग, तप, दान, सेवा, करुणा तथा संयम के सन्तुलन से आर्थिक विषमता को दूर किया जा सकता है। आध्यात्मिक-पर्यावरण के अन्तर्गत तप, त्याग, तपस्या, ईशवन्दना, प्रकृति के प्रति मातृवत् चेतना विकसित करना। चिन्तन व व्यवहार में जीव और प्रकृति के प्रति भावात्मक-प्रेम आध्यात्मिक-पर्यावरण बनाता है। इसी कडी में नैतिक एवं धार्मिक पर्यावरण की आवश्यकता भी आधुनिक संदर्भ में दिखती है। एतदर्थ सत्य, अहिंसा, सदाचार, आत्मानुशासन, परोपकार नम्रता, सहानुभूति दया, करुणा आदि गुण नैतिक-आधार को पुष्ट बनाते हैं। धर्म का सीधा सम्बन्ध कर्म से है। अभीष्ठ कर्म करना आत्म-संयम और आत्मानुशासन द्वारा धार्मिक व नैतिक पर्यावरण में सकारात्मक बदलाव आता है।

सामाजिक पर्यावरणीय रूपान्तरण-

उपनिषद कहता है-

यानि दु:खानि या तृष्णा दु:सहा ये दुराधय:।
शान्तचेत:सु तत्सर्वं तमोऽर्केष्विव नश्यति।।

(महो. उप. ४/२९)

नानाविध दु:ख अनन्त तृष्णाएं, असाध्य रोग एवं पारिस्थितिकीय संकट सभी मन की शान्ति, स्थिरता व सभ्यता पर अवलम्बित हैं। अस्थिरता और अशान्ति ही विविध प्रदूषणों और सामाजिक पर्यावरणीय संकटों का मूल है। अत: उपनिषद् एतदर्थ अनुशासन बता रहा है कि, 'मनुर्भव' मनुष्य बनो और आत्मानुशासनरूपी योग को अपनाओ। प्राकृतिक घटकों के प्रति मातृ-चेतना विकसित करो। पारिवारिक-रूपान्तरण के संदर्भ में अथर्ववेद कहता है-

अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवतु संमना:।
जाया पत्ये मधुमतीं बाचं वदतु शान्तिवाम्।।

(अथर्व-३/३०/२)

अर्थात् आदर्श गृहस्वामी वही है जिसके बेटे माता पिता के आज्ञाकारी, माता बच्चों की हितकारी, पति-पत्नी में पारस्परिक मधुर सम्बन्ध हों। पारिवारिक-रूपान्तरणहेतु उक्त औपनिषदीय वाक्यों को स्मरण रखना समय की माँग है। ऋग्वेद भी यही शिक्षा हमें देता है कि, अपना आचरण हमें साफ रखना चाहिए। इससे उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। पारिवारिक व सामाजिक धरातल पर शुचिता का वातावरण पनपता है। लम्बी आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। सद्-आचरण करते हुए मनुष्य को संयमित और अनुशासित जीवन जीना समग्र पर्यावरणीय रूपान्तरणहेतु श्रेयस्कर है। अन्यथा सब कुछ ज्ञात होने पर भी लाभ नहीं होता जैसे- जादू की गाय दूध नहीं देती। अत: व्यावहारिक धरातल पर

अनुशासनात्मक मूल्यों को अमल में लाना ही जिन्दगी जीने का दिव्य सूत्र है।

पर्यावरणीय-रूपान्तरणहेतु आत्मानुशासन रूपी योग की भूमिका विषय पर विचार विनिमय करने के उपरान्त निष्कर्षत: यह कहना संगत होगा कि, 'द दाम्यत' अर्थात् मनुष्य बन जाओ। आत्म-शासन करो। व्यक्ति के जीवन का शाश्वत सत्य यही है कि, वह आत्मानुशासित होकर संयमित प्रकृति-अनुकूल जीवन जिए। प्रजापति का प्रथम उपदेश आज के संदर्भ में बड़ा सार्थक है। इसमें समग्र शान्ति का भाव छिपा है। 'द दयध्वम्' अर्थात् दया की उपासना करो। प्राकृतिक घटकों के प्रति आप के मन में जो हिंसक वृत्तियां हैं उनका दमन करो। भौतिक अन्धी प्रगति, भौतिकता की दौड़ की होड़ तथा प्राकृतिक संसाधनों का शोषण हमें अपने अस्तित्व से दूर कर रहा है। एक हाथ में नंगी तलवार पकड़कर मुख में शान्ति का मन्त्र बोलने से शान्ति कभी नहीं मिलती। एक हाथ में कुल्हाड़ा पकड़कर अन्धी प्रगति की सोच पनपती है। दूसरी ओर पर्यावरणीय संकटों के निराकरणहेतु विश्वस्तरीय समिति जमती है। कैसी विडम्बना यह कैसा राग? कैसे सब्ज बनाएँगे हम अपना बाग? 'द दत्त' प्रजापति कहते हैं कि, एक चींटी से लेकर विशालतम हाथी जैसे जीवों का भी इन प्राकृतिक संसाधनों पर उतना ही अधिकार है जितना कि एक मनुष्य का। मनुष्य बेहद विवेकशील प्राणी है। विवेक का प्रयोग असंयम और अनुशासनहीनता में न लगा कर आत्मानुशासन का भाव प्रकृति के प्रति रखना ही समग्र रूपान्तरण की ओर एक सकारात्मक कदम होगा।

– डालसर, राम नगर (उधमपुर), जम्मू। मोबा: ९४१९२-९४८९३

अन्यथैव हि मन्यन्ते पुरुषा: तानि तानि च।
अन्यथैव प्रभु: तानि करोति विकरोति च।।

महा. वनपर्व, ३०.३२

वनवास के समय द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि- सांसारिक लोग पृथ्वी पर दिखाई देने वाली वस्तुओं को अलग अलग प्रकार से देखते हैं, पर परमपिता परमात्मा उन्हें और ही रूप में बनाते और बिगाड़ते रहते हैं अर्थात् मनुष्य कुछ और सोचता है परमात्मा कुछ और ही कर देता है।

संत-शिरोमणि दादूदयाल

– डॉ. रामप्रकाश शर्मा

निर्विवाद रूप से भारत अनादि काल से अध्यात्म, संस्कृति, साहित्य, ऋषि-मुनि, महात्मा और संतों का देश रहा है। भारत की इस पुण्यभूमि पर समय-समय पर दिव्य, महान् और तेजस्वी पुरुष अवतरित होते रहे हैं। किन्तु विगत शताब्दियों में आधुनिकता और भौतिकवाद हम पर इस कद्र हावी होता गया कि हमने विकास और उन्नति के नाम पर विज्ञान की विनाशकारी एवं संहारक उपलब्धियों से विश्व को विनाश के उस अंतिम छोर तक पहुंचा दिया जहां मानवता अश्रुपात करती हुई दिखाई दे रही है। पाश्विक शक्तियों का ताण्डव-नृत्य सर्वत्र दिखाई दे रहा है। ऐसे अशांत एवं भयंकर वातावरण में भयाक्रान्त मानवता के परित्राण का एक ही विकल्प है- त्यागी, तपस्वी महात्माओं की वाणी का निरन्तर श्रवण, पठन-पाठन एवं अनुशीलन। संत महात्माओं और सद्ग्रंथों ने मानव मन की शांति के लिए इन्हीं मार्गों का प्रतिपादन किया है। यह भी सर्वविदित है कि हिन्दूधर्म के अधिकांश ग्रंथ भाषा की क्लिष्टता और गूढ़ रहस्यात्मक ज्ञान के कारण सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं हैं। ऐसे में इन धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों को आत्मसात् कर अपने अनुभवों में पिरोकर सीधी, सरल, सरस और सहज भाषा में प्रकट करने वाले संतों की अमृतमयी मधुरवाणी ही इस भयावह विपत्ति से निस्तार पाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। संतों की वाणी का अवलम्बन प्राप्त कर मानव मानसिक शांति को प्राप्त कर सकता है। संत कबीर, रविदास, नानक, सूर, तुलसी, मीरा आदि महान् संतों की मधुर वाणी से करोड़ों लोग मानसिक तृप्ति का अनुभव कर चुके हैं तथा असंख्य अतृप्त इस ओर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं। इन्हीं महानात्माओं की मौक्तिक लड़ी में निरंजन निराकार ब्रह्म के परमोपासक दादूदयाल महाराज अग्रिम सिरे पर प्रतिष्ठित होकर सुशोभित हो रहे हैं। इन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव से यह स्पष्ट किया कि भौतिक सुखों की प्राप्ति से ही मानव को आत्मिक शांति नहीं मिल सकती बल्कि इसके लिए आध्यात्मिकता का आश्रय लेना परमावश्यक है। वस्तुत: दादूदयाल संतों के संत हैं फलत: इन्हें जगत् ने संत-शिरोमणि की उपाधि से सुशोभित किया है। जीवन की सार्थकता परिभाषित करते हुए दादू कहते हैं-

हरि भज साफिल जीवना परोपकार समाय।
दादू मरणा तहाँ भला जँह पशु पंखी खाय।।
राम नाम निज औषधि, काटहि कोटि विकार।
विषय व्याधि से ऊबरै, काया कंचन सार।।

मानव के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण, सद्भावना और जीवननैया को भवसागर से पार लगाने वाली साखियों के माध्यम से संत-प्रवर

दादूदयाल ने दिग्भ्रमित मानव का मार्गदर्शन किया और कर रहे हैं-

तन-मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय।
दादू विषय विकार की बात ना बूझै कोय।।
आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल बिचारिये, दूजा कौन गँवार।।

संक्षिप्त जीवन परिचय:- जन्मश्रुति के अनुसार विक्रमी संवत् १६०१ में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को पुत्र के अभाव में दु:खी ब्राह्मण लोदी राम को साबरमती के तट पर कमल दल पर दादू तैरते हुए मिले थे। यहीं से इनके संदर्भ में इस नश्वर भौतिक संसार में कमलदल की भांति निर्लेप रहने का संकेत मिलता है। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में कांकरिया तालाब में खेलते हुए अचानक एक वृद्ध साधु ने बालक दादू को दर्शन दिए और अगम ब्रह्म के दर्शन कराए। उस साधु ने इनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया कि तुम संसार को निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश देकर सांसारिक दु:खों से मुक्ति दिलाओगे। वास्तव में यही दादू की गुरुदीक्षा थी और यहीं से इनके जीवन का प्रवाह भगवद् भक्ति की ओर प्रवाहित हुआ-

दादू गैव माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया परम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, दख्या अगम अगाध।।

गृहस्थ-जीवन त्यागने के बाद इन्होंने कई वर्षों तक कठिन तपस्या की और गुरुकृपा से इनको सिद्धि मिली। इनके अनुयायिओं तथा शिष्यों की लम्बी श्रृंखला में ५२ पट शिष्य हुए जिनमें गरीबदास, सुंदरदास, रज्जब और बखना प्रमुख हैं। दादूजी हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल (मध्यकाल) में ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवि बनकर उभरे। इनका हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी सहित कई भाषाओं पर विशेषाधिकार था। शबद, साखी के रूप में इनकी भावाभिव्यक्ति प्रेमभाव से परिपूर्ण है। जात-पात के निराकरण, हिन्दू-मुसलमानों की एकता आदि विषय पर इनके पद तर्क-प्रेरित न होकर हृदय-प्रेरित हैं। स्वभाव से अत्यधिक 'दयालू' होने के कारण ही इनको दादू 'दयाल' के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। भावों की सहजता, सटीकता और सार्थकता के परिणाम स्वरूप इनके नाम पर ही पंथ 'दादूपंथ' की शुरुआत हुई।

अकबर भी हुए प्रभावित- एक बार सम्राट् अकबर ने दादूदयाल से भेंट करने के लिए अपनी राजधानी फतेहपुर सीकरी में आने का निमंत्रण भिजवाया। दादू जब अकबर के दरबार में पहुंचे और अपने बैठने के लिए प्रबंध नहीं पाया तो क्षणभर विचार किया ही था कि अकबर ने तुरंत एक साथ इन सवालों के जवाब देने को कहा- खुदा की जात क्या है?, उसका अंग क्या है?, उसका वजूद कैसा है?, उसका रंग कैसा है? दादू महाराज ने इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिये-

इश्क खुदा की जात है, इश्क खुदा का रंग।
इश्क खुदा-ए-वजूद है, इश्क खुदा का अंग।।

दादू का उत्तर सुनकर अकबर अपने सिंहासन से तुरंत उठ खड़े हुए और उनसे क्षमा याचना करते

हुए बैठने के लिए उचित सम्मान और आसन दिया। अकबर दादू जी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने ४० दिनों तक दादू के साथ सत्संग किया। इसी प्रकार अकबर ने दादू जी से तीन गुणों और पांच भूतों की रचना का क्रम जानने की जिज्ञासा रखी तो दादू जी ने कहा कि-

एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोय।
आगे पीछे वो करै, जो बल हीणा होय।।

दादू जी के अमृत वचनों से प्रभावित होकर अकबर बादशाह ने 'गौहत्या बंदी' का फरमान जारी किया और उनकी प्रशस्ति में उन्हें अल्लाह का नूर जशहिर किया-

दादू नूर अल्लाह का, दादू नूर खुदाय।
दादू मेरा पीव है, कहे अकबर शाह।।

साँभर में साधना:- दादूदयाल जी अपने समय में अत्यन्त प्रतिष्ठित होने के कारण इनकी कीर्ति-पताका दूर-दूर तक फैल रही थी। राजस्थान प्रदेश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए दादू जी साँभर पहुंचे। साँभर झील की प्रसिद्धि के फलस्वरूप दादू जी झील के बीच टेकड़ी पर कुटिया बनाकर निवास करने लगे और साधना में लीन हो गए। १२ वर्षों तक दादू जी साँभर में ही रहे। इस दौरान इन्हें खूब लोकप्रसिद्धि प्राप्त हुई। यहां पर इनके उपदेशों और प्रवचनों को सुनने वालों की संख्या बढ़ने लगी। हिन्दू-मुस्लिम सहित विभिन्न सम्प्रदायों के लोग उनके पास आने लगे। शुद्ध चैतन्य, परब्रह्म परमात्मा उनके उपास्य थे और 'निरंजन राम' तथा 'सत्य' इनके प्रवचनों का केन्द्र। 'राम' शब्द का प्रयोग दादू ने 'प्रणव' की तरह किया। दादू के अनुसार निर्गुण उपासना में सुमिरन निर्गुण के वाचक नाम के रटने से होता है फिर चाहे वो ओंकार हो या राम या कृष्ण अथवा रहीम या फिर कोई और-

दादू सिरजनहार के केते नाम अनंत।
चित्त आवै सो लीजिए, यौं साधु सुमिरै संत।।

निर्गुण आधार की प्रधानता के कारण उनकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती गई। दादू की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता से कुछ लोगों में उनके प्रति विद्वेष की भावना भी पनपने लगी। इसी वैमनस्य के वशीभूत होकर कुछ लोगों में उनके प्रति विरोध भी प्रबल होने लगा लेकिन दादू निर्भय, निर्विकार रहकर अपने मार्ग पर चलते रहे और अपने 'पीव' का गुणगान करते रहे-

एक अक्षर पीव का, सोई संत करि जाणि।
राम नाम सतगुरु कह्या, दादू सो परमाणि।।

मरुभूमि हुई पुनीत:- कपिल मुनि, मीरा जैसी महान् विभूतियों की तपस्थली मरुभूमि को संत दादू ने अपनी साधना से पुनीत किया और प्रदेशवासियों को गौरवान्वित होने का सुअवसर प्रदान किया। दादू जी अपने भ्रमणकाल में राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर गए और भक्तों तथा साधकों को निहाल किया। इन्होंने पुष्कर के नजदीक करड़ला पहाड़ी को अपना साधना-स्थल बनाया और यहीं पर केकड़े के वृक्ष के नीचे एक विशाल शिलाखण्ड के पास ध्यान लगाया।

दादू के पंच तीर्थों में आज भी करड़ला को प्रथम धाम माना जाता है। आमेर की पहाड़ी पर बना दादू-मंदिर आज दादू-पंथियों का प्रमुख तीर्थ स्थान माना जाता है। बताया जाता है कि इसी स्थान पर रज्जब जी, मोहन जी मेवाड़ा, मोहन जी दफ्तरी आदि प्रसिद्ध शिष्यों ने दादू को अपना गुरु बनाया। बिणजारा जाति के आग्रह पर दादू जी मोरड़ा गांव में भी गए। यहां पर दादू तालाब के किनारे जिस वटवृक्ष के नीचे रुके थे वही स्थान वर्तमान में 'दयाल जी का वट' और 'तालाब दयाल सागर' के नाम से प्रसिद्ध है। दादू जी इससे पूर्व आबू पर्वत का भ्रमण भी कर चुके थे। इन्होंने मरुभूमि के जिस स्थान को अपने श्रीचरणों से स्पर्श किया वह इनके शिष्यों और भक्तों के लिए तीर्थ स्थल बनता गया।

संत दादूदयाल हमारे राष्ट्र की विरासत हैं। दादूजी ने अद्वैत निर्गुण निराकार, ब्रह्म 'राम' में मन लगाने की शिक्षा दी। उनका संदेश है कि 'मन' को 'राम' में इस प्रकार घुला-मिला देना चाहिए जैसे पानी में नमक घुलकर रस रूप में परिणत हो जाता है-

जब मन लागै राम सौं, तब अनत कहा पर जाय।
दादू पाणी लौण ज्यौं, ऐसे रहै समाय।।

आमेर, पुष्कर, करड़ला, मोरड़ा, नारायणा तथा साँभर जैसे अनेक स्थल हैं जहां दादू जी अपने जीवनकाल में गए और वहां से प्राप्त अनुभवों के कारण लोक प्रसिद्ध होते गए। दादूदयाल जी की साधना स्थली, प्रवचन केन्द्र, शिक्षा, अमृतवाणी, शिष्य परम्परा, ज्ञान का प्रसार तथा अनुभव प्राप्ति सहित अनेक ऐसे तत्व हैं जो इन्हें भारतीय समाज में संत-शिरोमणि के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

– २/१००, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, जवाहरनगर, श्रीगंगानगर (राज.)
मोबाईल: ०९८८७४-३१०५६

सम्प्रयोज्य वियोज्यायं कामकारकरः प्रभुः।
क्रीडते भगवान् भूतैः बालः क्रीडनकैरिव।।

महा. वनपर्व, ३०.३७

युधिष्ठिर द्रौपदी को संसार की वास्तविकता बताते कह रहे हैं कि- जिस प्रकार छोटा बालक खिलोनों से खेलता हुआ कभी उनको आपस में मिला देता है कभी अलग करता रहता है। इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् प्रभु भी प्राणियों का संयोग और वियोग करते हुए केवल क्रीडामात्र ही करते हैं।

काश्मीर शैवदर्शन में 'वाक्' की अवधारणा

– डॉ. सुरेन्द्र पाल

संस्कृत-वाङ्मय में व्याकरण, दर्शन, वेदों, उपनिषदों तथा तन्त्रादि में वाक् की पर्याप्त चर्चा मिलती है। इस का कारण यही है कि जगत् के सारे व्यवहार इसी वाक् के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। सारी संस्कृति और सभ्यतायें इसी वाक् की गोद में ही फूलती फलती हैं। काश्मीर शैवागमों में भी इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संवित स्वातन्त्र्य वाले शिव के वागात्मक रूप को भी पर्याप्त स्थान मिला है। इस दर्शन के अनुसार परमतत्त्व परमशिव की प्रमुख शक्तियाँ पाँच हैं:- १. चित् शक्ति, २.आनन्द शक्ति, ३. इच्छा शक्ति, ४. ज्ञान शक्ति, ५. क्रिया शक्ति। इन्हीं पाँचों से ही वाक् का विस्तार हुआ है। श्रीमहेश्वरानन्द प्रणीत महार्थमंजरी में इन पाँचों शक्तियों को वाक्पंचक- परा, सूक्ष्मा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी का क्रमश: कारण माना गया है।[१] वास्तव में वाक् के इन भेदों में परा और सूक्ष्मा दोनों एक ही हैं। अत: वाक् के चार रूप ही हैं। वाक् के भेदों की संख्या के बारे में प्राचीन काल में ऋषियों ने भी संकेत दिए हैं-

'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि'[२]। ब्राह्मणग्रन्थों में इस 'चत्वारि वाक्' शब्द से तात्पर्य चार प्रकार की भाषा- मनुष्यों की भाषा, पशुओं की बोली, पक्षियों की कूजन और क्षुद्रजन्तु जैसे सरीसृप सर्पादि की ध्वनियाँ- इन चार रूपों को ग्रहण किया गया है।[३] आचार्य यास्क ने इस चार प्रकार की वाक् से अभिप्राय- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात- ग्रहण किया है।[४] काश्मीरीय शैव-दर्शन में वाक् के परादि चार रूपों का ही वर्णन किया गया है। वे हैं:- परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।

परा वाक्- आचार्य अभिनवगुप्त ने 'परा' शब्द की व्युत्पत्ति दर्शाते हुए लिखा है:- 'पूर्णत्वात् परा' अर्थात् परा सभी तरह से पूर्णता है। परावाक् का दूसरा वाक् शब्द वच् धातु से क्विप् प्रत्यय करने से बनता है जिसका अर्थ है- वाणी। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार परावाक् सब वाणियों की कारणरूपा वाणी है। यह चितिस्वरूपा है, नित्या है तथा अहमस्मि का पारमार्थिक स्वरूप है। यह सदैव अपने ही रस से देदीप्यमान होती है।[५] यही परमेश्वर का स्वातन्त्र्य है। शैवागमों के अनुसार यही परमेश्वर का हृदय है। यह वह वाणी है जो काल और देशगत सभी विशेषताओं से रहित है।[६] इसी के अनाहत शब्द से विश्व के सभी

१. एता एव चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियाख्या: शक्त्या: परा-सूक्ष्मा-मध्यमा- बैखरीति वाग्रूपाश्चानूभूयन्ते। महार्थमंजरी परिमल; पृ. ८६
२. ऋग्वेद; १.१६४.४५ ३. शतपथ ब्राह्मण; ४, १, ३, १६ ४. निरुक्त; १३,९ (परिशिष्ट)
५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका; १.५.१३
६. या स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी। सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिन:।। वही; १.५.१४

शब्दव्यापारों का बोध होता है।[७] विश्व का सम्पूर्ण वाङ्मय इसी के परामर्श से युक्त है। इस तरह इस वाक् को प्रत्यभिज्ञादर्शन में चिति तथा स्वातन्त्र्य का ही रूप माना गया है। यह वह सामर्थ्य है जिससे भगवान् शिव अपने अन्तर्गत विद्यमान छत्तीस तत्त्वात्मक जगत् को ठीक इसी तरह व्यक्त करते हैं जैसे यह परावाक् से पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी का अवभासन होता है।

पश्यन्ती वाक्- इसमें बाह्याभिव्यक्ति की इच्छा के उदय से लेकर सारे विषयों की आन्तरिकी प्रतीति प्रधान होती है। इसमें वाच्य और वाचक का भेद स्फुट नहीं होता। इन दोनों में क्रम देश और काल की दृष्टि से संभव होता है पर ये क्रम तथा भेद अस्फुट-सा रहता है। इसी क्रम को दृष्टि को रखते हुए प्रत्यभिज्ञादर्शन के आचार्य सोमानन्दनाथ ने कहा है कि पश्यन्ती में क्रिया होती है तथा इसके पूर्व और पर दो भेद हैं। इन भेदों में दर्शनव्यापार से पहले इच्छा रूप विचार का होना अनिवार्य है।[८] उदाहरण के लिए एक कुम्भकार को जब घट बनाना होता है तो उसमें घट सम्बन्धी इच्छा का पहले होना जरूरी होता है और इच्छा के पश्चात् ही वह घट बनाने में सफल हो पाता है।[९] इतना ही नहीं इस इच्छा के पहले चित्-तत्त्व में सूक्ष्म कार्योन्मुख उल्लास का होना परमावश्यक है; नहीं तो कोई भी प्रमाता किसी भी कार्य को पूरा करने में सफल नहीं हो सकता। यह उल्लास ही किसी भी कार्य को करने का सर्वप्रमुख चरण है।[१०] यही उल्लास जो आन्तर में उत्पन्न पूर्ववर्ती इच्छा को बाद में आकार-प्रकार प्रदान करता है; इच्छा का परभेद है।

मध्यमा वाक्- इसका व्यापार भीतरी है। इसका व्यापार द्वितीय वाक् के प्रकार पश्यन्ती तथा चतुर्थ बैखरी के मध्य वाला होता है; अत: इसे 'मध्यमा' नाम से जाना जाता है। अपि च, इसमें प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार पारमेश्वरीय विमर्श शक्ति ही अन्त:करण को प्रेरित करती है, अत: यह वाक् 'मध्यमा' कही जाती है। इसी विमर्शशक्ति से प्रेरित होकर ही अन्त:करण में विकपना नामक व्यापार पैदा होता है जिसके भीतर ही संकल्प, निश्चय और अभिमनन और संकल्प वाले व्यापार समाहित होते हैं। इस तरह ज्ञानशक्ति द्वारा क्रियमाण सभी कार्य इसी मध्यमा वाणी द्वारा ही संपन्न होते हैं। इस 'मध्यमा' का एक यह भी कारण है कि ज्ञान को इस दर्शन में इच्छा और क्रिया का माध्यम माना गया है। शायद यह भी इसके 'मध्यमा' इस नामकरण का एक कारण रहा होगा।

इस मध्यमा वाणी की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें वाच्य और वाचकों अर्थात् शब्द और उसके अर्थों का विमर्श विमर्शकर्त्ता के मन के भीतर ही भीतर एक प्रत्यय के रूप में तो होता ही रहता है परन्तु यहां अभी उस विमर्श का बाह्य आभासन नहीं हुआ होता। इस तरह यहां शब्द

---

७. विश्वमपलपति प्रत्यवमर्शेन इति च वाक्। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी; १.५.१३

८. शिवदृष्टि; २.८४ ९. वही; २.८५ १०. वही; २.८६

अभी अपने स्थूलरूप या बाह्य चित्ररूप तक नहीं पहुंचे होते। यहां एक कुम्भकार उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:-

जैसे एक कुम्भकार जिसने अभी घड़ा बनाना है, घड़ा बनाने से पहले उसके अन्त:करण में उस निर्मेय घट का चित्र और उसका सम्पूर्ण आकार-प्रकार होता है; बिल्कुल ठीक वैसे ही यहां भी वस्तुगत चित्र अभी मानसिक स्तर पर मन तक ही सीमित होता है और उसने भी क्रियात्मक दूरी को तय करना है।[११] इसी हेतु प्रत्यभिज्ञा दर्शनकार वाच्य और वाचक दोनों के यहां अभी चैतन्य में विश्रान्त होने की बात करते हैं।

वैखरी वाक्- प्रत्यभिज्ञा दार्शनिकों के मत में वाक् का चतुर्थ प्रकार है- वैखरी वाक्। इस वाक् का स्तर मध्यमा के पश्चात् होता है। यहां तक पहुंचकर वाक् जो अभी तक चैतन्य तक ही सीमित थी; अब उसका विमर्शन बहिर्रूपता को प्राप्त कर लेता है। यहां तक वाच्य जगत्-कर्ता के ज्ञान में विद्यमान होता है, परन्तु यहां पर आकर वह अपने गन्तव्य वाचकत्व तक पहुंच जाता है। अत: महेश्वरानन्द इसे क्रिया-शक्ति की अभिव्यक्ति मानते हैं।[१२] वे इस वैखरी वाक् को निम्नप्रकारेण स्पष्ट करते हैं:-

'वैखरी इति प्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपारुस्फुरणतया क्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते"[१३]। अर्थात् वैखरी वाणी ताल्वादि मुख के अंगों का व्यापार है और इसे क्रियाशक्ति व्यक्त करती है। अपि च, विश्व के सभी रूपों का ज्ञान इसी वैखरी के द्वारा ही होता है। काश्मीरीय शैवदर्शन की दृष्टि से यह सद्विद्या की अवस्था है। चूँकि इस अवस्था में जगत् बाह्यरूप से स्पष्ट हो जाता है। सभी भाषाओं की वर्णमालायें इसी वैखरी का ही रूप हैं। संक्षेप में वैखरी वाणी वाक् का स्थूलरूप है। संसार का सारा वाग्व्यवहार इसी के द्वारा संपन्न होता है। संसार की समस्त भाषाओं में वर्तमान सभी वर्ण इसी वैखरी में ही अन्तर्भूत होते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीरीय शैवदर्शन में वाक्तत्त्व का बहुत ही व्यापक तथा विस्तृत वर्णन हुआ है। इस दर्शन के वाक् विषयक अध्ययनोपरान्त यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सृष्टि के आरम्भ में नाद से लेकर स्थूल से स्थूलतर जो भी कोई वस्तु है सब कुछ वाक् से जुड़ा हुआ है। अन्तत: यही कहा जा सकता है कि अगर यह वाक्तत्त्व न होता तो संसार का विकास पूर्णत: अवरुद्ध हो जाता। एवं मानव का सर्वमुखी विकास वाक् के बिना असम्भव ही नहीं; अशक्य है।

– एसोसियेट प्रोफैसर, सरकारी रिपुदमन कॉलेज, नाभा (पंजाब)

११. मध्यमा पुन: वाच्य-वाचकयो: भेदमामर्श्य समानाधिकरण्येन विमर्शव्यापारा।- परात्रिंशिका; पृ.७
१२. वैखरी नाम क्रिया ज्ञानमयी भवति मध्यमावाक्। इच्छा पुन: पश्यन्ती सूक्ष्मा समरसा वाक्।। महार्थमंजरी; ४९, पृ. १०५
१३. महार्थमंजरी मंजरी ; ५० (परिमल)

श्रीगुरु अंगद देव जी: जीवनदर्शन

– प्रो. रणजीत सिंह

श्री गुरु अंगद देव जी सिक्खों के दूसरे गुरु हुए हैं। श्री गुरु नानक देव जी द्वारा गुरता-गद्दी सौंपने के बाद आप जी ने धुरकी बाणी के माध्यम द्वारा आम लोगों को सीधे रास्ते पर चलने का उपेदश दिया। भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार, 'सिक्ख धर्म के दूसरे पातशाह श्री गुरु अंगद देव जी का प्रकाश (जन्म) फेरु मल्ल खत्री के घर माता दया कौर के गर्भ से मत्ते की सराऐ (सराऐ नागा) में हुआ आपका पहला नाम भाई लहणा था।'[१] आप जी के पिता व्यापारी थे। गरीबी के कारण फेरू मल्ल पहले हरीके और फिर खडूर जा पहुँचे। यहीं ही १५ साल की आयु में भाई लहणा का विवाह बीबी खीवी के साथ हुआ। जिसके बाद आपके घर दो पुत्रों बाबा दातु जी, बाबा दासु जी और दो पुत्रियों बीबी अनोखी जी, बीबी अमरो जी ने जन्म लिया।

भाई लहणा जी बचपन में देवीपूजा करते थे। एक गुरसिक्ख भाई जोध से गुरबाणी का पाठ सुनने के बाद भाई लहणा जी के मन में श्री गुरु नानक देव जी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट हुई। संत सेवा सिंह के अनुसार, 'एक बार आप जी ने गुरु नानक देव जी की उपमा सुनकर करतारपुर में से होकर, देवीमाता के दर्शनों को जाने का मन बना लिया। गुरु नानक पातशाह जी की रूहानी शख्सीयत का ऐसा प्रभाव आप जी ने कबूला, कि आप जी सदा के लिए गुरु नानक देव जी के ही बनकर वहीं ठहर गये और संगत को विदायगी दे दी।'[२] गुरु नानक देव जी ने भी आप को गुरता-गद्दी देने से पहले कठिन परीक्षा ली जिस पर आप पूरे उतरे। डॉ. जोगेश्वर सिंह के अनुसार, 'श्री गुरु नानक साहिब जी द्वारा गुरता-गद्दी के लिए की गई परख का संक्षेप विवरण इस प्रकार है:- नदीन की पंड चुकना, पानी के गंदे टोऐ में से कटोरा निकालना, धर्मसाल से बाहर फैंकना, सर्दी की रात बारिश में धर्मसाल की गिरी हुई दीवार उसारनी, सर्दी में आधी रात दरिया रावी में कपड़े धोना, धाणक रूप, मुर्दा खाण का हुक्म मिलणा आदि।'[३] भाई लहणे की सेवाभावना से खुश होकर श्री गुरु नानक देव जी ने १५३९ ई. में आपको गुरु-गद्दी पर विराजमान करके माथा टेका और भाई लहणे से श्री गुरु अंगद देव जी बना दिया।

गुरु-गद्दी पर विराजमान होने पर श्री गुरु नानक देव जी के पुत्र श्री चन्द ने एतराज किया। जिस कारण श्री गुरु नानक देव जी के आदेशों की

१. भाई काहन सिंह नाभा, महान कोष, नैशनल बुक शॉप, चांदनी चौक, दिल्ली, २०११, पन्ना १११.
२. संत सेवा सिंह, गुरु ग्रंथ साहिब दर्शन, गुरुद्वारा रामपुरा खेड़ा, गढ़दीवाला, होशियारपुर, मई २०१७, पन्ना ५१.
३. डॉ. जोगेश्वर सिंह, गुर इतिहास प्रारम्भिक जानकारी, सिक्ख धर्म अध्ययन, धर्म प्रचार कमेटी, एस.जी.पी.सी. श्री अमृतसर, दिसम्बर २०१३, पन्ना ८१

पालना करते हुए आप खडूर साहिब आ गए। यहां आने पर बाबा बुढ्डा जी ने आपको संगतों की अगुवाई करने की विनती की। आप द्वारा विनती मंजूर करने पर संगत आपके साथ जुड़ने लगी व निर्विघ्न गुरबाणी का प्रवाह आरम्भ हो गया। लंगर की प्रथा निर्विघ्न चलने लगी। इस तरह श्री गुरु अंगद देव जी ने खडूर साहिब को दूसरे कीर्तन केन्द्र के तौर पर स्थापित कर दिया। संत सेवा सिंह के अनुसार, 'सारा दिन शारीरिक आहार के लिए लंगर चलता जिसमें बिना भेद-भाव एक ही पंगत में सभी को बिठाकर, बिना भेद-भाव के लंगर बांटा जाता। लंगर में स्वादिष्ट सुंदर भोजन और घी वाली खीर और हलवा प्रसाद नित्य ही वितरित किया जाता था, जिसका संकेत सत्ते-बलवंड जी की वार में मिलता है। लंगर की सारी देखभाल व सेवा माता खीवी जी (गुरु के महल) करते:-

बलवंड खीवी नेक जन जिसु बहुती छाओ पतराली।।
लंगरि दउलति वंडीऐ रसु अमृत खीरि घिआली।।

(श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब पन्ना ९६७)

और

नित रसोई तेरीऐ घिओ मैदा खाण।।[४]

(श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब पन्ना ९६८)

श्री खडूर साहिब में आप ने और अनेक कार्यों की आरम्भता की ताकि संगतों को गुरबाणी के साथ जोड़ा जा सके। आप ने हमेशा ही हाथ से काम करने को पहल दी। डॉ. जोगेश्वर सिंह के अनुसार, 'श्री गुरु अंगद देव जी आप हाथ से कार्य करके मुंझ की वटक में से प्रशादा खाते। बच्चों में गुरमुखी लिपि को प्रचलित किया और भाषा के तौर पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की लिपि की आधारशिला बनी।..... सिक्खों को शारीरिक तौर पर बलवान् होने के लिए आप ने मल्ल अखाड़े की रचना की। गुरु साहिब जी ने सिक्खधर्म को आज्ञाकारी होकर सहनशील होने का पाठ पढ़ाया। 'जोति ओहा जुगति साय़ि' के महावाक्य के अनुसार आप ने अपने समय में वही जीवन जुगति सिखाई जो श्री गुरु नानक साहिब जी ने आप को दर्शायी थी। श्री गुरु अंगद देव जी ने श्री गुरु नानक देव जी द्वारा स्थापित संगतों को और संगठित किया। श्री गुरु नानक देव जी द्वारा रची गई बाणी को जगत् के उद्धार के लिए प्रकट करते समय अपनी बाणी में नानकपद का इस्तेमाल किया जिसको अगले गुरु साहिबानों ने भी निरंतर जारी रखा। आप जी के ६३ श्लोक श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज हैं।'[५]

श्रीगुरु अंगद देव जी ने गुरमुखी लिपि की स्थापना करके इसके प्रसार के लिए बहुमूल्य कार्य किए। संत सेवा सिंह के अनुसार, 'आप जी ने गुरबाणी एवं इतिहास को मातृबोली में संभाल करने के लिए, पैंतीस गुरमुखी अक्षरों की स्थापना की। खाली समय में जहां गुरमुखी लिपि का बोध विद्यार्थियों को देते थे, वहीं इतने व्यस्त जीवन में

४. संत सेवा सिंह, गुरु ग्रंथ साहिब दर्शन, गुरुद्वारा रामपुरा खेड़ा गढ़दीवाला, होशियारपुर, मई २०१७, पन्ना ५३.
५. डॉ. जोगेश्वर सिंह, गुर इतिहास प्रारम्भिक जानकारी, सिक्ख धर्म अध्ययन, धर्मप्रचार कमेटी, एस.जी.पी.सी. श्री अमृतसर, दिसम्बर २०१३, पन्ना ८१-८२

से समय निकाल कर बच्चों को गुरमुखी बालबोध (कायदे) लिख कर बाँटते रहते थे, ताकि मातृबोली की लिपि का प्रसार ज्यादा से ज्यादा लोगों तक हो सके।[६]

श्रीगुरु अंगद देव जी बेपरवाह भी थे। शेरशाह सूरी से हार खाकर हुमायूँ लाहौर की तरफ जा रहा था। श्री गुरु अंगद देव जी की शोभा सुनकर वह उनके दर्शनों के लिए आया। पर गुरु जी ने उसकी तरफ कोई खास ध्यान नहीं दिया। अपनी बेईज्जती समझकर हुमायूँ ने गुस्से में आकर तलवार म्यान में से निकाल ली। गुरु जी ने बड़े धैर्य के साथ कहा कि हुमायूँ आप जी की यह तलवार शेरशाह सूरी के साथ लड़ाई के समय कहाँ थी। यह सुनकर हुमायूँ बहुत शर्मिंदा हुआ। उसने गुरु अंगद देव जी का आर्शीवाद लिया और चला गया।

श्री गुरु अंगद देव जी निम्रता के पुंज थे। संत सेवा सिंह के अनुसार, 'जब जोगी आप जी के दर्शन करने के लिए खडूर साहिए आए, उन्होंने सवाल किया कि आप में कौन-सा गुण था जिस कारण गुरु नानक देव जी, जिनके आगे सारा संसार झुका, वह आपके आगे झुके हैं। उन्होंने आपको गद्दी देकर माथा टेका है। आप जी ने सिद्धों के सवाल के उत्तर में फरमाया, सिद्धो! मेरे में कोई गुण नहीं था और न ही है। गुरु नानक देव जी का झुकना तो एक माँ का झुकना था जो मिट्टी से सने बच्चे को अपनी गोद में लेने के लिए बच्चे की तरफ झुकती है। ऐसे निम्रता, हलीमी, अद्भुत शक्तियों के नूर, मिठे, सहनशीलता एवं धैर्य के सागर ४८ वर्ष महान् सेवा-सिमरन और पर-उपकार को पूर्ण कर २९ मार्च १५५२ ई. में खडूर साहिब में ज्योति-जोत समा गए। ज्योति-जोत समाने से पहले अपनी जगह श्री गुरु अमरदास जी को गुरता-गद्दी के वारिस बनाकर गुरु नानक देव जी के पंथ की बागडोर सौंप दी। बलवंड जी के कथन के अनुसार:-

सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु।।
पियु दादे जेविहा पोतरा परवाणु।।६।।

(श्रीगुरु ग्रंथ साहिब पन्ना ९६८)

और

अंगदि किरपा धारि अमर सतगुरु थिर कीओ।

(श्रीगुरु ग्रंथ साहिब पन्ना १४०८)

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि सिक्खधर्म के दूसरे गुरु श्री अंगद देव जी निम्रता के पुंज थे। उन्होंने निम्रता का साथ पकड़कर हर इम्तिहान को पास किया। जिस करके श्री गुरु नानक देव जी ने गुरुता-गद्दी के वारिस आप जी को बनाया। खडूर साहिब को गुरबाणी का महान् केन्द्र स्थापित करके आप ने ६३ श्लोकों की रचना की जो कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में दर्ज हैं। श्री गुरु अमरदास जी को गुरता-गद्दी सौंप कर आप ज्योति-जोत समा गए।

– अध्यक्ष, संगीत विभाग, सन्त बाबा दलीप सिंह मैमोरियल खालसा कॉलेज, डुमेली (कपूरथला), मो. ०९८५५४-५३५३९

६. संत सेवा सिंह, गुरु ग्रंथ साहिब दर्शन, गुरुद्वारा रामपुरा खेड़ा, गढ़दीवाला, होशियारपुर, मई २०१७, पन्ना ५३.

भारतीय-साहित्य का मूल-संवेदना

– डॉ. राजेश कुमार शुक्ल

यदि किसी भेदभाव अथवा साहित्यिक दृष्टि से भारतीय साहित्य के परिकल्प, परिकल्पना, चिन्तन-मनन पर विचार करें, तो तथ्य यह है कि अखिल भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु समग्र वैश्विक साहित्य, संवेदना का विकास है। इसे और भी कई तरीके से कहा गया है जैसे- साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है; साहित्य भावों एवं विचारों की समष्टि है, साहित्य मानवचेतना की अभिव्यक्ति है या साहित्य समाज का दर्पण है, आदि-आदि। पत्र के शीर्षक में ये दोनों शब्द ही महत्त्व के हैं- 'भारतीय साहित्य' और संवेदना। भारतीय साहित्य किसे कहते हैं? भारतीय साहित्य से क्या तात्पर्य है? इस सम्बन्ध में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि 'हिन्दी साहित्य, हिन्दी जाति का साहित्य है। हिन्दी जाति का मतलब हिन्दू जाति नहीं है। इसमें हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी। दलित तथा स्त्री-समाज भी। जैसे तमिल जाति का साहित्य तमिल साहित्य है, जैसे बंगला जाति का साहित्य बाँगला साहित्य है। भारतीय साहित्य अनेक जातियों के साहित्य का समन्वित रूप है।'[१] अत: भारतीय साहित्य से तात्पर्य है वह साहित्य जो अखिल भारतीय मनुष्य के भावों एवं विचारों की समष्टि है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनुकूल है। यहां 'साहित्य' शब्द केवलमात्र शब्द और उसके अर्थ के साहचर्य का ही द्योतक नहीं अपितु वह 'भारतीय' शब्द के साथ प्रयुक्त होने के कारण उसकी संस्कृति, सभ्यता, समाज और भाषा को भी व्यंजित करता है।

अब दूसरा शब्द 'संवेदना' है। प्रश्न उठता है कि 'संवेदना' क्या है? जो भारतीय साहित्य का मूल है और जिसे त्याग कर भारतीय साहित्य की परिकल्पना सम्भव नहीं। संवेदना का शाब्दिक अर्थ है- अनुभूति, सहानुभूति, समवेदना प्रकट करने का भाव या दु:ख की अनुभूति, मन का बोध या अनुभव आदि। 'वस्तुत: संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है और मनोविज्ञान में इसका इसी अर्थ में प्रयोग होता रहा है, जहां संवेदना उत्तेजना के सम्बन्ध में देह रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है। उदाहरण- हरी वस्तु हरे रंग को देखने की संवेदना की उत्तेजना मात्र है। उत्तेजना का हमारे मन मस्तिष्क तथा नाड़ी तन्तुओं द्वारा प्रभाव पड़ने पर ही हमें उसकी संवेदना होती है। संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है, जिसमें हमें विश्व की वस्तुविशेष का बोध न होकर, उसके गुणों का बोध होता है।'[२] यही गुणों का बोध होना या अनुभव होना और भाषा के माध्यम से उसे जन-सामान्य के लिए प्रस्तुत करना एक संवेदनशील साहित्यकार का उद्देश्य है। अत: संवेदना हमारे मन के भावों एवं विचारों को मिलाने का कार्य करती है, यही भारतीय साहित्य का मूल है।

१. हिन्दी आलोचना: बीसवी शताब्दी, लेखक- डॉ. रेवतीरमण, पृ.-२२
२. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-१, संपादक- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.-७०७

भारत विविधताओं का देश है, जहां जाति, धर्म, सम्प्रदाय, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति, सभ्यता और अनेक भाषा-भाषी लोगों के कारण सर्वाधिक भाषाई भिन्नता के दर्शन होते हैं, किन्तु इन सबके बावजूद साहित्यिक स्तर पर जो एकता कायम है, उसका मूल संवेदना ही है; जो साहित्य को आकार प्रदान करती है। इस प्रकार 'साहित्य का सरोकार मनुष्य की संस्कारिता का निर्माण करना या उसका परिमार्जन करना है। वह मनुष्य को समाज की इकाई के रूप में ही स्पर्श करता है और उसके संवेगात्मक व्यक्तित्त्व को स्पर्श करता है।'[३] इसीलिए बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जन-समूह के हृदय का विकास कहा है। साहित्य, ज्ञान और अनुभव का वह लिपिबद्ध रूप है, जो निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। वैदिक साहित्य से लेकर आज तक का साहित्य इसका प्रमाण है। 'साहित्य जो परिवर्तन लाता है या साहित्य से जो परिवर्तन आते हैं और लगातार आते रह सकते हैं- उनका क्षेत्र मानव का पूरा संवेदन है, पूर्वानुमान से परे जाने वाली उसकी सर्जक कल्पना है।'[४] अतः साहित्य को किसी सीमा में बाँध कर नहीं रखा जा सकता।

साहित्यिक दृष्टि से भारतीय साहित्य विविध भाषाओं का विशाल साहित्य है। वैदिक संस्कृत से लेकर आज तक की सभी भाषाएँ- संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, बँगला, उड़िया, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, पहाड़ी आदि विविध कालों में संवेदना का माध्यम रही हैं। संवेदना का प्रकटीकरण भाषा के माध्यम से होता है जो भावों की वाहिका है। भावों को भाषा के माध्यम से प्रकट कर लिपिबद्ध करना एक संवेदनशील साहित्यकार का कर्तव्य है इसी से साहित्य का जन्म होता है। भाषा तो साहित्य का मूल आधार होती है, अतः भाषा की विशेषताएँ साहित्य के स्वरूप पर दूरगामी प्रभाव डालती हैं। प्रत्येक राष्ट्र की भाषागत विशेषताएँ उसके साहित्य के वैशिष्ट्य को सिद्ध करने में सहायक होती हैं।[५] इसीलिए अधिकांश साहित्यकारों ने अपनी संवेदना को प्रकट करने हेतु जनभाषा का आश्रय लिया।

भारतीय साहित्य की परिस्थितियाँ विविध कालों में भिन्न-भिन्न रहीं है किन्तु संवेदनात्मक स्तर पर पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक विविध भाषाओं में लिपिबद्ध साहित्य में एकरूपता दृष्टिगत है। जो विविध संस्कृतियों का मिश्रण है जिसका मूल उत्स मानवतावाद है। जो साहित्य को कालजयी बनाता है तथा चिन्तन के क्षेत्र में मानव और उसके व्यक्तिगत हित को ही नहीं, अपितु समष्टिगत हित को सर्वोपरि मानता है। 'साहित्य मानव चेतना की अभिव्यक्ति है, चेतना अनुभूति की सघनता तथा चिन्तन की गहनता के समन्वित आधार पर स्वरूप ग्रहण करती है। अनुभूति का सम्बन्ध हृदय की संवेदनशीलता से है और चिन्तन वस्तुगत के

३. साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया- संपादक, सच्चिदानन्द वात्स्यायन लेख- साहित्य और समाज: प्रभाव के स्तर- लेखक- रामकमल राय, पृ.-४८

४. साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया- संपादक, सच्चिदानन्द वात्स्यायन लेख- साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, लेखक - अज्ञेय, पृष्ठ-९९

५. तुलनात्मक साहित्य, संपादक- डॉ. नगेन्द्र, लेख- राष्ट्रीय साहित्य की संकल्पना, लेखक- बसंत बापट, पृ.-३७

स्थिति बोध के लिए उठने वाली शंकाओं जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों के बौद्धिक समाधान का दूसरा नाम है।[६] साहित्यकार आम आदमी से अधिक संवेदनशील, जागरूक, सहृदय एवं बुद्धिमान् होता है। समाज में घटने वाली घटनाओं एवं व्यक्तियों के दु:ख-दर्द को अनुभव कर व्यथित होता है। उनके निराकरण हेतु उचित मार्ग प्रशस्त कर सुझाव देता है तथा अपने दायित्व का निर्वहन करता हुआ साहित्य-सृजन करता है। स्वान्त:सुखाय, सर्वजनहिताय एवं लोककल्याण-कारी समस्त भारतीय साहित्य गद्य एवं पद्य में लिखा गया विशाल साहित्य है।

संवेदना का सर्वाधिक प्रकटन पद्य में हुआ क्योंकि 'हृदय की संवेदनशील वृत्तियां विशिष्ट छन्द, स्वर, लय, गति, प्रवाह तथा ध्वनि के आधार पर मूर्त होकर पदरचना में सौष्ठव ला देती हैं। शब्दों में नाद-सौन्दर्य आ जाता है, वे कभी कोमलता, मधुरता, सरलता और परुषता में बंध कर थिरक उठते हैं।'[७] शायद संवेदना का यही उत्कृष्ट रूप उस क्षण आदिकवि वाल्मीकि के मुख से अनुष्टुप् छन्द में सहसा निकला जब वे तमसा नदी पर एक क्रौञ्च जोड़े को क्रीड़ारत देख रहे थे। उसी क्षण एक शिकारी ने उस जोड़े के नर-क्रौञ्च को बाण से घायल कर मार डाला। ऐसे कारुणिक दृश्य को देखकर वाल्मीकि के हृदय में शोक उत्पन्न हुआ और वे उस शिकारी को शाप देते हुए शोक में जो श्लोक कहते हैं जरा देखिए-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।[८]

अर्थात् हे निषाद! तूने काम से मोहित क्रौञ्च पक्षी को मारा है, तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो। यह संवेदना की वह चरमावस्था है जहां मानवमात्र के प्रति ही नहीं; अपितु मानवेत्तर प्राणियों के प्रति भी वही भावना है। जो साहित्य को मानवतावादी बनाता है और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, सहानुभूति, करुणा, सुख-दु:खात्मक अनुभूति सद्भाव की प्रतिष्ठा या स्थापना करता है।

वेद, पुराण, रामायण, श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थों का साहित्य संवेदना का चरम रूप है। समग्र भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखें तो विविध प्रान्तों का, विविध भाषा-भाषी रचनाकारों का साहित्य जैसे- असमियॉ के हेम सरस्वती माधव कन्दली, शंकर देव, माधव देव, आनन्द राम ढेकियाल फुंकन आदि, बाँगला के राजशेखर, जयदेव, नासिर शाह, विद्यापति, चण्डीदास, भारतचन्द राय गुणकर माइकेल मधुसूदन, बंकिम चन्द चटर्जी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी आदि। तमिल के कम्बन, आण्डाल, वेदनायकम् पिल्लै, वीरमुनि, नागनाद पडिंदर, मीनाक्षी सुन्दरम्, सुब्रह्मण्य भारती आदि। तेलुगु के राजानन्ने चोउ, नाचन सोमनाथ, बमोर पोतना, महाकवि तिक्कना, महाकवि श्रीनाथ, श्रीकृष्ण देव रायलु, पिंगालि सूरन्ना, शेषम् वेंकटपति, मुद्दुपलनि, आतुकूरिमोल्ला, नाद योगी त्यागराज आदि। कन्नड़ के पम्प, पोन्न, रन्न, नागचन्द्र, बसव, नार्णप्य आदि। मलयालम के तिरुविनांकोर, उण्णायिवार्यर, कोट्टयतम्पुरान, कुंचनय्यार चेरुश्शेरी, शंकर कुरुप, कृष्ण पिल्लै,

६. हिन्दी का गद्य साहित्य, लेखक- डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.-०३ ७. वही, पृ.३
८. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण- बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक संख्या-१५

गौरीशंकर शंकर कुरुप, बालमणि अम्मा, बशीर, वर्कि आदि। गुजराती के शालिभद्र सूरि, जिनधर, जयशेखर, अब्दुर्रहमान, नरसिंह मेहता, अखो, प्रीतम, वीर नर्मद, दलपत राय, नन्दशंकर मेहता, महीपत राम नीलकण्ठ, साक्षरवर्य गोबर्धन राम त्रिपाठी, नानालालका आदि। मराठी के मकुन्दराय, ज्ञानेश्वर, नरहरि सोनार, एकनाथ, मुक्तेश्वर तुकाराम, रामदास, प्रभाकर, सगन भाऊ, काशीनाथ छत्रे, बालशास्त्री जाम्मेकर, दादोबा पांडुरंग तर्खडकर, परशुराम गोडबोले, कृष्णशास्त्री, राजवाड़े आदि। उड़िया के शबरीया, लुईपा, वत्सादास सारलादास, शिशुशंकर दास, प्रताप राय, धनंजयभंज, वृन्दावनी दासी, भूपति पंडित, लोकनाथ विद्यालंकर, सच्चिदानन्द कविसूर्य, भक्तचरणदास, गोपालकृष्ण पट्टनायक, भीम भोई, राधानाथ राय, मधुसूदन राय, सच्चिदानन्द राउत राय आदि महान् रचनाकारों ने अपनी संवेदना से भारतीय साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की है। इनके अलावा अनेक दार्शनिकों, सन्तों, महात्माओं, समाज सुधारकों एवं हिन्दी साहित्य के अनन्य उपासकों ने अपनी लेखनी द्वारा संवेदना को ही साहित्यिक रूप प्रदान किया है। इनमें प्रमुख रूप से-- शंकराचार्य, रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, गौतम बुद्ध, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजाराममोहन राय, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, बाबा साहिब भीमराव अम्बेदकर आदि। इसी प्रकार चन्दबरदाई, अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, नानक देव, दादूदयाल, नामदेव, रैदास, मीराबाई, केशवदास, बिहारी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, राम कुमार वर्मा, त्रिलोचन शास्त्री, नागार्जुन, अज्ञेय, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल आदि हिन्दी साहित्य के विशिष्ट रचनाकारों की दिव्य वाणी संवेदना का उत्तरोत्तर विकास है। जिसमें भारतीय समाज की आत्मा का निवास है, जैसे- आत्मा का कभी नाश नहीं होता है आत्मा अमर-अजर है, उसी प्रकार भारतीय साहित्य भी अजर-अमर है।

सम्पूर्ण साहित्य को पढ़ने से निष्कर्षरूपेण लिखा जा सकता है कि वैदिक संस्कृत से लेकर आज तक के समग्र भारतीय साहित्य का मूल-तत्त्व संवेदना ही है; जो विविध भाषाओं में भारतीय पूंजी के रूप में सुरक्षित एवं संरक्षित है। संवेदना भारतीय संस्कृति और भाषा का वह अद्भुत संयोग है जो विश्वबन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण है। किसी वस्तु, स्थिति या भाव का जो हृदय पर प्रभाव पड़ता है, उसकी प्रतिक्रिया है। तभी तो जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में विदेशी युवती कार्नेलिया से भारतीय गौरव की महिमा का गुणगान कराया है-

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

– सहायक आचार्य हिन्दी (संविदागत) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मा. वि.)
राजीव गांधी परिसर, मेणसे, शृंगेरी -५७७१३९ (कर्नाटक) मो० ०८४९४८४१७१६

समाधिस्थ बाबाजी

– श्री सीताराम गुप्ता

बाबाजी समाधिस्थ हैं आज
समाधिस्थ हैं बरसों से
नहीं हैं वे समाधिस्थ
किसी वन-प्रांतर में
किसी पर्वत-गुहा में भी
नहीं है वे समाधिस्थ
समाधिस्थ हैं वे
अपने ही आश्रम के
एक फ्रीजर में
लगे हुए
शीतल पेय की
एक बोतल से
माननीय न्यायालय भी
जानते हैं ये बात अच्छी तरह से
उन्होंने भी दे दी है इजाज़त
बाबाजी को रहने की समाधि में
जब तक चाहें वे
पर किसने माँगी थी ये इजाज़त?
क्या स्वयं बाबाजी ने?
और क्या एक फ्रीजर में
ज़िंदा रहना
अथवा समाधिस्थ होना
संभव है?
हाँ, संभव नहीं है ये
असंभव है ये
हम जैसों के लिए
हम जैसे संशयग्रस्त
अधम नास्तिकों के लिए
महान आत्माओं के लिए
नहीं है असंभव कुछ भी
ऐसी महान आत्माओं को
कौन मार सकता है?
वो जब तक चाहेंगी
ज़िंदा रहेंगी
लोक कल्याण हेतु
जब तक चाहेंगी
समाधिस्थ रहेंगी
जब चाहेंगी उठ खड़ी होंगी
झाड़कर अपने जिस्म पर लिपटी
बर्फ की मोटी परत को
जब चाहे कर जाएँगी
महाप्रयाण
हाँ समाधिस्थ बाबाजी भी
सही समय आने पर
लौटेंगे अपनी दिव्य चिर निद्रा से
घोषणा करेंगे नाम की
अपने उत्तराधिकारी के
करेंगे बँटवारा संपत्ति का
उत्तराधिकारियों में
देंगे अनुयायियों के नाम

एक अच्छा सा पैग़ाम
और फिर कर जाएँगे
महाप्रयाण
इस दौरान
कोई नहीं देखेगा उन्हें
उठते हुए झाड़कर बर्फ़
कोई नहीं सुनेगा उन्हें
करते हुए घोषणा
उत्तराधिकारी के नाम की
देते हुए पैग़ाम
अनुयायियों के नाम
पर
सबको बतलाया जाएगा
कि बहुत प्रसन्नता की बात है
कि बाबाजी त्यागकर
समाधिस्थ अवस्था
अपनी दिव्य चिर निद्रा
बाहर आ गए हैं
कि बाबाजी
अनुयायियों को अपने
देंगे दिव्य संदेश
बस थोड़ी ही देर में
तभी आश्रमों के बाहर
अनुयायी भरकर उत्साह में
लगेंगे नाचने गाने
ढोल बजाने
रंग उड़ाने
आतिशबाज़ी करने
और फिर कुछ समय के बाद
की जाएगी घोषणा
कि इस महान आत्मा ने
कह दिया है अलविदा
इस नश्वर संसार को
अनुयायी डूब जाएँगे
गहरे शोक में
फिर रुदन करते हुए
दुख में बसों को फूँकते
सरकारी संपत्तियों को
लगाते हुए आग
उपद्रव मचाते हुए
हो जाएँगे सम्मिलित
मीलों लंबी अंतिम यात्रा में
उस महान आत्मा की
और कुछ देर बाद
हो जाएगा दफ़्न
समाधि का सच

– ए. डी.-१०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४। मोबा: ०९५५५६२२३२३

युगप्रवर्तक सन्त कबीर

– डॉ. रमेश कुमारी

माला फेरत युग गया, मिटा ना मन का फेर।
करका मनका डारि के, मन का मन का फेर।।

समाज-सुधारकों में प्रथम स्थान पर विराजमान निराकार ईश्वर के भक्त कबीर आज भी आदरणीय हैं। उन्होंने वर्गहीन समाज की स्थापना करके मानवतावाद का प्रचार कर धर्म के नाम पर प्रचलित विभिन्न धार्मिक अन्धविश्वास, बाह्य आडम्बरों और मिथ्या प्रदर्शनों का खण्डन किया है। उनकी रहस्यवादी विचारधारा ने हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ा गौरव प्रदान किया है।

विरहिणी आत्मा का एक चित्र-

कबीर देखत दिन गया, निस ही देखत जाइ।
विरहिणी पिव पावै नहीं जियरा तलपै माइ।।

कबीर के रहस्यवाद में वैराग्य नहीं प्रेम और प्रीति की भावना है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार-

कबीर सिर से लेकर पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्कड़, भक्त समान निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य और कर्म से वन्दनीय थे।

कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई। राम पर भरोसा था और ज्ञान कठोर तथ्य था।

श्रद्धालु गृहस्थ के मन में योगी ने शंका उत्पन्न कर दी थी। माया भवजाल चौरासी लाख योनियों के चक्र और साधना मार्ग की दुष्करता ने उसे लाचार बना दिया। कबीरदास को अक्खड़ता योगियों से विरासत में मिली थी पर यह उनका प्रधानगुण नहीं था। योग के विकट रूपों का अवतरण करते हैं। गगन और पवन की पहेली बुझाते हैं। सुन्न और सहज का रहस्य पूछते हैं। द्वैत और अद्वैत के तत्त्व की चर्चा करते हैं और फिर अवधू के ज्ञान पर कुटिल हंसी हंसते हैं, पूछते हैं-

अवधू अच्छा रहूँ सो न्यारा।
जो तुम पवन गगन चढ़ायों, करो गुफा में बासा।
गगन पवना दोनों बिनसे, कहां गया जोग तुम्हारा।।

योगी अवधू यही भाषा समझते हैं। उनको सम्बोधित करते हुए वह पूरी अक्खड़ता से काम लेते हैं, अपने व्यक्तित्व को बहुत ऊंचे उठाकर बात करते हैं, विरोधी के ही अस्त्र से विरोधी को घायल करते हैं और खूबी यह कि यह इनकी अनधिकार चेष्टा नहीं थी परन्तु साथ ही कबीर स्वभाव के फक्कड़, सत्य के खोज़ी और अपना घर जला कर हाथ में मुराड़ा लेकर निकल पड़े थे। वह अपना घर स्वयं अपने हाथों जलाने में समर्थ को अपना साथी बनाने को उद्यत थे। प्रेम के मतवाले, इस वर्ग के मतवाले नहीं जो विरह में तड़पते, आहें भरते हैं। जहां प्रिय से क्षणभर का

भी वियोग नहीं, जहां द्वैत ही मिट गया, वहां बेचैनी, बेकरारी और तड़पन कहां। यह उनका अनन्य भक्त का रूप है। कबीर की यह मस्ती, फक्कड़पना, लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखण्ड आत्मविश्वास का परिणाम थी। उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान, गुरु और साधना पर सन्देह नहीं किया। कबीर का स्वयं अपने प्रति और अपने प्रियतम के प्रति अखण्ड, अडिग विश्वास उनकी कविता में अद्‌भुत शक्ति भर देता है। इसी सरलता और विश्वास के कारण अपने प्रिय के समक्ष बहुत विनीत और हतदर्प होकर वह राम के कुत्ते के रूप में 'मुतिथा' नाम से अपना परिचय देते हैं। पर कहीं भी प्रिय से शिकायत नहीं, मचलन नहीं, उपालम्भ नहीं महान् की महत् मर्यादा को अपनी ससीनता से गंदला करने का उपक्रम नहीं सिर्फ है तो सम्पूर्ण आत्मविश्वास, आत्मसमर्पण, अडिग भक्ति और पूर्ण आत्मविश्वास। कबीर वस्तुत: रूढ़ियों और परम्पराओं की असद् मूतियों को तोड़ कर सही मानो में सत्य की स्थापना करने वाले महान् पुरुष थे।

कबीर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' ने यहां तक कहा है कि हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है, 'तुलसीदास'।

अपनी आत्मविश्वासपूर्ण आक्रामकता में कबीर कहते हैं कि जिन पाँच तत्त्वों की चादर को सुर, नर, मुनि भी ओढ़ कर मैली होने से नहीं बचा सके, उसे ही कबीर मैली नहीं होने देते। इस उक्ति में कबीर का दम्भ या घमण्ड नहीं अपनी शुचिता, सरलता और शुद्धता का अडिग विश्वास ही प्रकट है। कबीर जो कहते हैं, वह आत्मविश्वास पर आधारित होने के कारण सीधा चोट करने में समर्थ होता था।

मैं कहता हूँ आँखिन देखी। तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी। तू राख्यो अरूझाई रे।।

कबीर में सहजता है, संतुलन है, समता है, पर जिसे वह गलत मानते हैं, उसे क्षमा करने का सामर्थ्य नहीं है। वह सामाजिक ऊँच-नीच, मर्यादा के समर्थकों और आग्रहकर्त्ताओं को कभी क्षमा नहीं करते। गुमराह होने वालों का दोष उघाड़ने में भी वे यत्र-तत्र चुटकी और आनन्द लेते दिखाई देते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कबीर युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और कबीर में युगप्रवर्त्तक की दृढ़ता वर्तमान थी। इन्हीं गुणों के कारण युगप्रवर्त्तक के रूप में सफल हो सके।

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान् विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि थे। जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जन जीवन का नायकत्व किया। कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी जीवन का

संवेदनशील स्पर्श करने वाले और मर्यादा के रक्षक कवि हैं। उन्होंने स्वत: कहा है, 'तुम जिन जानो गीत है यह निज ब्रह्म विचार।' पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना ही उनका प्रधान लक्ष्य है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर संत-महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है।' कबीर ने जैसा समाज देखा था उसमें नाना प्रकार की विषमताएं थीं। यद्यपि कबीर स्वयं उच्च कुल के न थे परन्तु उनको अपने सदाचार एवं भगवत्-प्रेम पर स्वाभिमान न था।

यद्यपि कबीर पढ़े लिखे नहीं थे उन्होंने स्वयं भी इस बात को 'मसि कागद छुयो नहीं कलम गहि नहीं हाथ' जैसी बातों से स्पष्ट किया परन्तु वे भाषा के महान पण्डित थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा के विषय में लिखा है, 'भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है- बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार-सी नज़र आती है।'

कबीर सामाजिक मूल्यों का विरोध करते समय सर्वनिषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते। वे बुराइयों की निंदा करते हैं। लेकिन साधना और सामाजिकता को नए मूल्य प्रदान करते हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित नाना साधनाओं की त्रुटियों की आलोचना की है तो उनका सारत्व भी ग्रहण किया है, वे भक्त थे। भक्ति हृदय की साधना है। इस हृदय-साधना के चलते वह शुष्क ज्ञान-साधना से आगे बढ़कर जगत् से भावात्मक संबंध जोड़ सके थे, जिसने उन्हें मानव-समाज की विषमताओं से पीड़ित और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की।

कबीर के व्यक्तित्व को एक वाक्य में इस प्रकार कहा जा सकता है- वह सिर से पैर तक मस्त-मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, आडम्बरी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर तथा जन्म से साधारण परन्तु कर्म से वन्दनीय थे।

– एम. एल. बी. जी. गर्ल्ज़ कॉलेज, टप्परियाँ खुरद, तहि. बलाचौर, नवांशहर।
दूरभाष: ९४६३०-८९७१०

गुरु गुणों की खान

– श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

मोह-भ्रमित मन को अध्यात्म की पावन पयस्विनी से धन्य बनाने वाला सद्गुरु ही होता है। वह शरीरधारी होकर भी अशरीरी होता है। सद्गुरु द्वारा इस संसार को स्वप्नवत् मानते हुए भी इसमें रहने पड़ता और लोक-हितकारी कार्य करना पड़ता है। सत्य तो यह है कि सद्गुरु के आसन पर मनुष्य नहीं ईश्वर स्वयं विराजमान रहता है। उसकी महिमा अनंत है। कबीर साहब ने कहा–

सद्गुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़ियाँ अनंत दिखावणहार।।

सद्गुरु हमारा सबसे बड़ा हित-चिंतक होता है। सद्गुरु ही लोक-परलोक दोनों की शिक्षा देकर शिष्य का लौकिक व पारलौकिक जीवन सफल बना देता है।

सद्गुरु कौन ?

'गु' अक्षर माया अविद्या अंधकारादि गुणों का भासक है तथा 'रु' अक्षर इस तिमिराधंकार को समूल नष्ट करने वाले परब्रह्म का द्योतक है। संक्षेप में गुरु शब्द गु+रु से बना है जिसका अर्थ क्रमशः 'अंधकार' और 'दूर करने वाला है' अज्ञानान्धकार में भ्रमित मानव को सत्यपथ दिखाने वाला एवं जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सम्यक् मार्गदर्शन करने वाला गुरु ही है।

यूनान के विद्वान् अरस्तु एक महान् दार्शनिक थे, लेकिन शिष्यों को अनेक बार अपनी बातें वे अत्यंत सहज और विनोदपूर्ण ढंग से समझाते थे। एक बार सुकरात से किसी ने पूछा- 'आपके गुरु कौन हैं ? सुकरात ने हँसते हुए उत्तर दिया- 'तुम मेरे गुरु के सम्बन्ध में जानना चाहते हो तो सुनो दुनिया भर के जितने मूर्ख हैं, वह सब मेरे गुरु हैं।' उस व्यक्ति ने पूछा- 'मूर्ख आपके गुरु कैसे हो सकते हैं ?'

सुकरात ने स्पष्ट किया, 'मैं यह देखने की कोशिश करता हूँ कि किसी व्यक्ति को किस दोष के कारण मूर्ख कहा जा रहा है। यदि वह दोष मेरे अंदर भी होता है तो उससे शिक्षा लेकर मैं अपने अंदर के दोषों को दूर कर लेता हूँ ताकि मैं मूर्ख न कहा जाऊँ। इस तरह मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उन्हीं से शिक्षा लेकर प्राप्त किया है। अब तुम्हीं बताओ कि मूर्ख ही मेरे वास्तविक गुरु हुए कि नहीं ?

गुरु का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखलाने जैसा है। गुरु के मुखारविंद से निकले हुए शब्द-समूह जब एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो प्रकाश-पुंज बन जाते हैं। गुरु की वाणी समस्त संशय व भ्रम का निवारण करती है। गुरु के गुणों का वर्णन करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। कबीर के शब्दों में बस इतना ही कहना उचित होगा कि–

सब धरती कागज करूँ लेखनी सब वनराय।
सप्त सिंधु की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय।।

गुरु कृपापात्र कौन ?

गुरु के वचनों का मन, वचन व कर्म तीनों से पालन करने वाला शिष्य ही गुरु की कृपा का पात्र

होता है। उसके मन में नित्य यह भावना होनी चाहिए-

ध्यानमूलं गुरोर्मूतिः पूजा-मूलं गुरोःपदम्।
मन्त्र-मूलं गुरोर्वाक्यम्, मोक्ष-मूलं गुरोःकृपा।।

अर्थात् ध्यान का मूल गुरु की मूर्ति है, पूजा का मूल गुरु के चरण हैं, मंत्र का मूल गुरु के वाक्य हैं। जब तक शिष्य गुरु की परीक्षा में खरा नहीं उतरता तब तक गुरु-कृपा प्राप्त नहीं होती। सच्चे शिष्य में दृढ़ता होती है एक बार जिसे गुरु बना लेता है तो वह श्रद्धा एवं पूर्ण मनोयोग से गुरु की सेवा में समर्पित हो जाता है। जब शिष्य के हृदय में सच्ची सेवा व लगन होगी तभी सद्गुरु चरण-रज प्राप्त होती है। शिष्य जिस दिन सद्गुरु की चरण-रज को पा लेता है तो उसके भव-त्रास समाप्त हो जाते हैं। कबीरदास जी ने कहा है-

यह जग दुख की बेलरी, गुरु सुखों की खान।
गुरु-कृपा जब होय तो, मिट जाय भव की त्रास।।

शिष्य के लिए गुरु ही सच्चा हितैषी होता है। जब शिष्य गुरु-चरणों में पूर्णरूप से समर्पित होकर उसकी आज्ञा का पालन करता है तब गुरु-कृपा से अपने आप ही संसार के सारे कड़वे फल दूर भाग जायेंगे। फिर ये जग दुःखों की बेल नहीं रहेगी। सच्चा सुख मिलेगा, जीवन धन्य हो जायेगा।

गुरु-शिष्य परम्परा-

भारत की गुरु-परम्परा एक आदर्श परम्परा है। इस परम्परा में गुरु पहले शिष्यों को ज्ञान प्रदान करते हैं। उसके बाद जिस शिष्य का आचरण तथा बुद्धि श्रेष्ठ होती है गुरु उसे अपना उत्तराधिकारी बनाता है। वही अपने गुरु की धार्मिक नीति-परम्परा को आगे चलाता है। जब गुरु ब्रह्मलीन हो जाता है वही शिष्य गुरु का आसन ग्रहण करता है। इस प्रकार एक ज्योति बुझने के बाद दूसरी ज्योति प्रज्ज्वलित हो जाती है। हजारों वर्षों से यही गुरु-परम्परा अखंडित रूप से चली आ रही है।

गुरु-शिष्य की इस अद्भुत परंपरा के प्रामाणिक उल्लेख दुनिया के सबसे पुराने ग्रंथ 'ऋग्वेद' में उपलब्ध हैं। इसके मंडल एक के १७०वें सूक्त में देवराज इन्द्र और भगवान् अगस्त्य का अध्यात्म-विद्या सम्बन्धी संवाद इसका प्रमाण है। अथर्ववेद में तो तत्ववेत्ता ऋषि के लिए सीधे 'आचार्य' संबोधन का उल्लेख है। कठोर तप, स्वाध्याय और त्याग से प्राप्त ज्ञान के अमृत को बिना किसी प्रलोभन, भय, अहंकार और आकांक्षा के सुपात्र (सुयोग्य शिष्य को) सहर्ष दान कर देने की इस परंपरा का कोई साम्य या सामानांतर नहीं मिलता। भारत की इस दैदीप्यमान परंपरा में जगद्गुरु भगवान् शंकर से लेकर वशिष्ठ, विश्वामित्र, घोर आंगरिस, बृहस्पति, शुक्राचार्य, नारद, सांडिल्य, सनत्कुमार, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, वामदेव, जाबालि-पिप्पलाद, अत्रि, दत्तात्रेय, अष्टावक्र, संदीपनि, पाराशर, जैमिनी, कणाद, पतंजलि, गृत्समद, आद्यशंकर माध्वाचार्य, निम्बकाचार्य, वल्लभाचार्य, तुलसी, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, परमहंस रामकृष्ण देव, महर्षि रमन, जे. कृष्णमूर्ति, ओशो रजनीश, भक्तिवेदांत अभयचरणजी, अरविंद, विवेकानंद ऐसे अनगिनत नाम हैं, जो भारत के आध्यात्मिक आकाश के प्रकाशपुंज हैं। सत्यवती नंदन भगवान् वेदव्यास अलौकिक कृति जय या महाभारत को पाँचवे वेद का सम्मान तो प्राप्त है ही उसके विराट् स्वरूप, विषयवस्तु, कथानक के बारे में तो यहां

तक कहा गया कि- 'यन्न भारते तन्न भारते' अर्थात् जो महाभारत में नहीं है वह कहीं नहीं है। भारतीय परंपरा में गुरु की पारसमणि से तुलना की गई है। किंतु जिन लोगों ने और गहरे जाकर इस परंपरा का अध्ययन किया है वे तो इससे भी सहमत नहीं है क्योंकि पारस लोहे को सोना तो कर सकता है पर पारस नहीं कर सकता। जबकि सद्गुरु अपनी सभी विद्या सिद्धियां, युक्तियां, सामर्थ्य पात्र-शिष्य को देकर, उसका आभ्यंतर परिमार्जन कर उसे 'सद्गुरु ही बना देता है।'

सद्गुरु की महिमा-

सद्गुरु की महिमा अनंत है। गुरु देव हैं, जो अज्ञान के अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश सर्वत्र दूर फैलाते हैं। मानव हमेशा जिज्ञासु होता है, ज्ञान के प्रति अतृप्त होने से सतत प्रयासरत रहा है। गुरु हमेशा नवीनतम शोध करते हुए हमें ज्ञान के नए रहस्यों से परिचित कराते हैं। सच तो यह है कि ज्ञान की प्राप्ति का कोई अंत ही नहीं है। 'ज्ञानयात्रा' में मानव रात-दिन सतत प्रयत्नशील रहता है। इसका उद्देश्य (लक्ष्य) यह भी है कि जीवन में 'समाधान' एवं 'मन की शांति' के साथ 'सार्थकता' का अनुभव हो।

सद्गुरु हमें अध्यात्म के मार्ग पर हमारी अंगुली पकड़कर हमें चलना सिखाते हैं और 'आत्मज्ञान' कैसे प्राप्त किया जाए इसकी विधि बताते हैं। जब अध्यात्म अनुभूति होती है तब वे 'चिदानंद स्वरूप' के रूप में अनुभव होते हैं, सद्गुरु ही परम गुरु है। सद्गुरु, विराट् अनंत 'शक्तिस्रोत है। इस महान् स्रोत की स्मृति कराने वाला उत्सव 'गुरुपूर्णिमा' है। इस दिन गुरुचरणों की पूजा करके उनकी वंदना-अर्चना श्रद्धापूर्वक की जाती है।

मंगलं गुरुदेवाय, मंगलं ज्ञानदायिने।
मंगलं मोक्षदात्रिणे, मंगलं सत्प्रकाशने।।

-प्रधान संपादक 'अध्यात्म अमृत' ज्ञानमंदिर, सिटी रोड, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ३०५८०१
मो. ०९२५२९८८२२१

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयया।।

महा. वनपर्व, ३१.३८

धर्म का फल तुरन्त दिखाई न दे तो इसके लिए धर्म एवं देवताओं पर किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। उन पर किसी प्रकार का दोषारोपण न करते हुए यथाशक्ति व्यक्ति को दान-पुण्य करते रहना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है भले ही उसमें कुछ विलम्ब हो जाय।

२१वीं सदी की सशक्त नारी

– सुश्री आशा रानी

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान बहुत ऊँचा है। नारी की माँ के रूप में और शक्ति के रूप में पूजा की जाती है। परन्तु सत्य यह भी है कि अग्नि-परीक्षा भी सदैव नारी ने ही दी है। उसे अपनी पवित्रता का सबूत समय-समय पर समाज को देना पड़ा है। नारी ही सत्तीप्रथा और दहेज-उत्पीड़न का शिकार हुई है। लेकिन आज नारी सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियाँ तोड़कर पुरुष-प्रधान समाज में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समानरूप से समाज के कल्याण के प्रति संलग्न है। आज की नारी पहले की तरह आश्रित नहीं है। वह अपना भाग्य खुद बनाती है।

विश्व के उन्नत और विशाल लोकतन्त्र भारत में प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनने का श्रेय जहां स्वयं इंदिरा गांधी को प्राप्त है वहीं विश्वभर में विश्व की सबसे पहली प्रधानमंत्री बनी श्रीलंका की भंडारनायके वर्ष १९६० में और उसके बाद यूरोपियन प्रधानमंत्री बनी ब्रिटेन की मारगेट थैचर। यहीं नहीं पहली भारतीय महिला रेडियो उद्घोषक बनी ऊषा मेहता। हिन्दी-सिनेमा की प्रथम भारतीय महिला प्रोड्यूसर बनने का श्रेय देविका रानी को मिला।

भारतीय महिलाओं में ही अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला और भारतीय मूल की ही सुनिता विलियम को याद किया जाता है। १९८० के दशक में उड़नपरी पी.टी. ऊषा ने समूचे विश्व में लोहा मनवाया था।

समाज में महिलाओं की परिस्थिति एवं उनके अधिकारों में वृद्धि ही महिला सशक्तिकरण है। जमीन से आसमान तक कोई क्षेत्र अधूरा नहीं है जहां महिलाओं ने अपनी जीत का परचम न लहराया हो। हालांकि यहां तक का सफर तय करने के लिए महिलाओं को काफी मुश्किलों एवं संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ा है।

समकालीन समाज में नारी सम्बन्धी व्याख्या में तीन अवधारणाओं को प्रयुक्त किया गया है। 'नारीत्व' अर्थात् 'जननिक' (*Genetic*) आधारित पुरुष एवं नारी के बीच शारीरिक अन्तर का आधार 'जैनेटिक' होता है।

द्वितीय अवधारणा 'नारीयता' (*Feminity*) सम्बन्धी है। समाज एवं संस्कृति के द्वारा नारी का विशिष्ट निर्माण 'नारीयता' है। जिसके माध्यम से उसकी परिस्थिति भूमिका, पहचान, सोच, मूल्य एवं अपेक्षाओं को गढ़ा जाता है।

तृतीय अवधारणा 'नारीवादी' सम्बन्धी विचारधारा से जुड़ती है। यह विचारधारा पुरुष एवं स्त्री के बीच की असमानता को अस्वीकार करके नारी के 'सशक्तीकरण' की प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप प्रदान करती है।

आज के वैश्वीकरण के दौर में नारीवादी परिप्रेक्ष्य बहुयामी स्वरूप धारण कर चुका है। एक तरफ जहां प्राचीन अप्रासंगिक विचारधारा को चुनौतियाँ मिल रही हैं। तो दूसरी ओर पुरुष मानसिकता द्वारा प्रदत सामाजिक, सांस्कृतिक

परिस्थिति को नकारा जा रहा है। जहां समाज की आधी आबादी को 'व्यक्ति'का दर्जा भी प्राप्त नहीं हो, वहां उसके साथ व्यक्ति जैसा व्यवहार की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। नतीजा स्त्रियों को सिर्फ एक अवैतनिक श्रमिक एवं उपभोग की वस्तु के रूप में देखा गया। 'मनुष्यता' की अपेक्षा एक मनुष्य के प्रति हो सकती है। एक वस्तु के प्रति नहीं। इसलिए कभी समाज ने उसे 'नगरवधू' बनाया, कभी देवदासी, कभी दुर्गा बनाया, तो कभी कुलीन मर्यादापूर्ण घर की बहू या फिर बाजार में बिकने वाली वैश्या। पुरुष मानसिकता ने कभी भी उसे एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं देखा।

प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा है:-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
यूं पीयूष स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

यह पंक्तियां जन-जन की जुबान पर चढ़ गईं। हमने एक जीते-जागते मनुष्य को सिर्फ एक भावनात्मक रूप दे दिया। उसे 'देवी' बना दिया, लेकिन कभी भी उसकी आकांक्षाओं की परवाह नहीं की, औरत सिर्फ एक सामान्य मनुष्य के रूप में जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुष की सहचरी बनना चाहती है। पुरुष की भांति जीवन में घर से बाहर निकल कर संघर्ष करना चाहती है। हमने कभी माँ के रूप में, कभी पत्नी के रूप में, कभी बहन के रूप में, हमेशा उसका मानसिक दोहन किया। वह घर के अन्दर एक ऐसी श्रमिक बन गई है, जो बिना पारिश्रमिक लिए अत्यन्त आत्मीयता से सभी सदस्यों की सेवा करती है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक अन्य प्रयास 'महिला दिवस' के आयोजन को माना जाता है। जिसकी शुरूआत अमेरिका में सोशलिस्ट पार्टी के आह्वान पर पहली बार २८ फरवरी १९०९ में की गई। आज की स्त्री न केवल पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना चाहती है। बल्कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत आगे तक जाना चाहती है। जहां उन्मुक्तता सृजन एवं सबलता का अहसास हो, जहां उसकी प्रतिभा की पहचान हो और जहां उसके व्यक्तित्व का निर्माण हो। आज की स्त्री उन्मुक्त उड़ान भरने के लिए व्याकुल है, नई सीमा को परिभाषित करने के लिए सचेत है और अपनी क्षमताओं का पूर्ण प्रदर्शन करने के लिए कृतसंकल्प है। उसके मार्ग में आने वाली बाधाएं अब उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति के आगे टिक नहीं पातीं। उसने स्वयं को सीमित ही सही, लेकिन उस मुकाम पर साबित कर दिया है। जहां पुरुष-प्रधान मानसिकता या समाज उसके अस्तित्व को नकार नहीं सकता, उसके व्यक्तित्व के प्रभाव से बच नहीं सकता।

इसके बावजूद उसे अभी मीलों सफर तय करना है, जो कंटकपूर्ण एवं दुर्गम है। लेकिन वह मानती है कि:-

वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या ?
जिसमें बिखरे शूल न हों,
नाविक की धैर्य-परीक्षा क्या ?
यदि धाराएं, प्रतिकूल न हों।

भारतीय संस्कृति में नारी-इतिहास का अवलोकन किया जाए तो यह समझते देर न लगेगी कि स्त्री आज से ही नहीं, अपितु वैदिक काल से ही अपने उदार चरित्र, नैतिक आदर्श, शिक्षण, योग्यता, सृजन-शक्ति आदि अनन्त गुणों

के कारण गौरवपूर्ण महिमा से मंडित रही है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रूवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।
(ऋग्वेद, १०.८५.४६)

युग-युग के संचित संस्कार,
ऋषि-मुनियों के उच्च विचार।
स्त्रियों, धीरों, वीरों के व्यवहार ही हैं
भारतीय संस्कृति के शृंगार।।

सच्चाई तो यह है कि संस्कृति का कार्य निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। स्त्री हो या पुरुष प्रत्येक देशवासी के लिए उसकी संस्कृति ईश्वर का स्वरूप है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' जैसे उच्चकोटि के वाक्यांश संस्कृत साहित्य में पुरातन समय से ही स्थान पाते रहे हैं जहां प्राचीन संस्कृत साहित्य के नारी-पात्र कहीं दैवीय रूप में तो कहीं दासत्व जैसी स्थितियों को स्वीकारते नज़र आते हैं।

एक ओर जहां ब्रह्मानंद शुक्ल जी ने अपनी साहित्य-रचना मणि-निग्रह में नारी को शक्तिस्वरूपा बताकर विद्या और विवेक में निपुण एवं संसार में आनंद की बहार लाने में सक्षम बताया है। वहीं दूसरी ओर राजिन्द्र मिश्र जी की कहानी शतपर्विका सात पुत्रियों एवं एक पुत्र के पिता जो पुत्र मोह में अंधे हैं, उनके नेत्र खोलने के लिए पर्याप्त है। कवि मैथलीशरण की यह पंक्तियां

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध, आँखों में है पानी।।

लेकिन आधुनिक युग में फिर से नारी के अंदर बदलाव आया है। आज नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हैं। नारी की स्थिति में पहले के मुकाबले अब काफी सुधार हुआ है। समाज-सुधारक और विचारकों ने नारीदुर्दशा पर भी ध्यान दिया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहनराय जैसे सुधारकों ने सति-प्रथा, बाल-विवाह पर रोक लगाई।

परम्परागत भारतीय समाज में सदैव से ही महिलाओं को पुरुष के अधीन रहना पड़ा है। यद्यपि हिन्दू-मान्यताओं में नारी को पूजनीय मानने की धारणाएँ पाई जाती हैं। किन्तु ये धारणाएँ दार्शनिक विचारमात्र प्रतीत होती हैं, क्योंकि माता, पत्नी, बहन और पुत्री सभी रूपों में महिलाओं को पुरुष के संरक्षण में रहने का विचार भी मिलता है। जो केवल इतना ही अभिव्यक्त नहीं करता है कि महिलाएँ अबला हैं बल्कि यह भी अभिव्यक्त करता है कि महिलाएँ पुरुष के अधीन हैं।

किन्तु आधुनिक युग में तीव्र गति से परिवर्तनशील भारतीय समाज में पश्चिमी आचार-संहिता का प्रसार हो रहा है, शिक्षा का प्रसार हो रहा है और महिलाएँ भी पुरुषों की भांति सरकारी और गैर सरकारी सेवाओं में ही नहीं पहुंच रही हैं बल्कि स्वरोजगार की तरफ भी बढ़ रही हैं।

मानवता की सेवा में समर्पित होने वाली कई ऐसी महिलाएं हैं। जिन्होंने देश का नाम रोशन किया है और नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुई हैं।

भारतीय विभूतियों को समक्ष रख कर महाकवि भवभूति ने कहा था कि-

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

अत: आज महिलाएं हर क्षेत्र में अपनी पहचान स्वयं बनाएं हुए हैं। प्रथम नोबेल पुरस्कार

विजेता रही हैं मैडम क्यूरी, यह पुरस्कार उन्हें सन् १९०२ और १९११ में दो बार मिला।

मदर टेरेसा जिन्हें पुरस्कारों से कोई मतलब नहीं, बस काम से ही मतलब था। फिर भी इन्हें सन् १९६१ में 'पद्मश्री' से, १९६२ में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के दस हजार डालर के 'मैगसेसे पुरस्कार' से, १९६९ में एक लाख के 'नेहरू पुरस्कार' से और १९७९ में विश्व के सर्वाधिक प्रतिष्ठित 'नोबेल शांति' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके बाद भी यह सिलसिला थमा नहीं। सन् १९८० में उन्हें मिला भारत का सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' और १९८३ में अमेरिका का सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार 'मेडल ऑफ फ्रीडम'। फिर भी ऐसी मान्यता रही कि मानवता के लिए उनकी सेवा इन सबसे बहुत-बहुत ऊपर है।

फिर भी नारी तो नारी है जिसने नारी की शक्ति को नहीं पहचाना या नहीं पहचान रहे हैं, वो बस थोड़ा वक्त रुक जाएं, पूरा विश्व नारीशक्ति से भली-भांति परिचित हो जाएगा। भले ही पुरुष नारी का महत्व समाज के सामने स्वीकार न करें। किन्तु वह यह बात जानता है कि अगर नारी नहीं तो पुरुष भी नहीं.... क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक गाड़ी के दो पहिये.... जिनसे जीवन चलता है। हे नारी! पुरुष तुझे हमेशा सलाम करता है। भले ही व्यक्त न करे, तू शक्ति है, सर्वशक्तिस्वरूपा है।

कोमल है कमजोर नहीं तू
शक्ति का नाम ही नारी है।
जग को जीवन देने वाली
मौत भी तुझसे हारी है।

स्त्री परिवार की धुरी है। केंद्र में होने से परिवार उसकी प्राथमिकता है। पुरुष की तरह वह सब कुछ छोड़-छाड़कर दिन-रात अनुसंधान में, लेखन में या शोधकार्य में लगी नहीं रह सकती। घर-बच्चों की जिम्मेदारी के बाद कैरियर या अन्य क्षेत्रों के प्रति समर्पण उसके लिए द्वितीय स्थान पर हैं। इसीलिए कई बार प्रखर प्रतिभाएं भी अपने विशेष क्षेत्रों में सामने न आकर एक अंतराल के बाद घर की चारदीवारी में ही दम तोड़ देती हैं। न तो सब मदर टेरेसा की तरह तपस्विनी हो सकती हैं, न म्याँमार जाँग सान सू की तरह आजीवन क्रांति को समर्पित, न ही विज्ञान में नई खोजों में बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाली बारबरा मैकलिनटाक, जरट्रड बी की तरह वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए अपने ध्येय की खातिर विवाह न करने वाली। फिर भी हमें गर्व होना चाहिए कि अनेक बाधाओं के बीच काम करते हुए यह महिलाएं शिखर तक पहुंची हैं।

अत: स्त्री सब सह लेती है। सबसे ज्यादा दर्द बर्दाशत करने की क्षमता भी उसी में है। बचपन में भेदभाव, ससुराल में उलाहने सहने के बाद भी नहीं टूटती। बस टूटती सिर्फ एक वजह से है कि जिस हमसफर के लिए वह सब त्यागकर आई है, एक वही उसे समझ नहीं पाता।

-पुस्तकालय अध्यक्षा, राजकीय महाविद्यालय, इन्दौरा (हि.प्र.)

वैदिक देवता- 'मरुत्' (ऋग्वैदिक प्रथम मण्डल के विशेष सन्दर्भ में)

– श्री जितेन्द्र कौशिक

वेदों में 'देवता' से अभिप्राय वर्ण्यविषय से है। ऋग्वेद के प्रथम 'मण्डल के सैंतीसवें, अड़तीसवें व उनचालीसवें सूक्त में मरुत्सूक्त का मुख्य विषय वायुपदार्थ विद्या है। यास्करचित निरुक्त में 'मरुत्' शब्द का निर्वचन तीन धातुओं से हुआ है- 'रु शब्दे', रुच् दीप्तावभिप्रेतौ, द्रु गतौ।[1] इन अर्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि जिससे संसार के सभी पदार्थों में गति, बल, चेष्टा होती है, जिसके कारण वाक्-व्यवहार संभव होता है और जिससे पदार्थों में प्रकाश होता है, वह मरुत् है। स्वामी दयानन्द ने 'मृङ्प्राणत्यागे'[2] से मरुत् शब्द की सिद्धि की है। जिसके बिना जीवन संभव नहीं, जो शरीर को धारण किये हुए है, जो जीवनी-शक्ति के रूप में सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, वही मरुत् है। मरुत् शब्द के समान 'वात' और 'वायु' का निर्वचन भी गत्यर्थक धातुओं से हुआ है। यहां यह पूर्णरूपेण स्पष्ट होता है कि मरुत्, वात, वायु या प्राण समानार्थक शब्द हैं। वायु गतिशील है और 'गति' वायु का प्रमुख गुण है। संसार के सभी पदार्थों में गति का कारण वायु ही है।

वायु आकाश में उत्पन्न होते हैं।[3] इसलिए वायु को 'पृश्निमातरः (पृश्निराकाशो माता येषां वायूनां)[4] कहकर भी सम्बोधित किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आकाश से वायु की उत्पत्ति का वर्णन है।[5] प्राणियों के सभी प्रकार के कर्म यथा- उठना, बैठना, चलना, दौड़ना, कूदना, बोलना, सुनना यहां तक कि जन्म, वृद्धि और नाश का हेतु भी वायु ही है। वायु ही प्राणरूप होकर शरीर में प्रविष्ट होता है। अथर्ववेद में वर्णन है कि वायु का नाम ही प्राण है।[6] और यह प्राण ही स्वयं को पांच भागों में (प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान) विभक्त कर शरीर को धारण करता है। प्रश्नोपनिषद् में 'तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते'[7] ऐसा कहा गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह वायु ही प्राण कहलाता है। वायु से ही पदार्थों को सींचना, पदार्थों को प्रकट करना और वाणी के व्यवहार आदि कार्य सिद्ध होते हैं।[8]

वायु ऑक्सीजन रूप में सभी प्राणियों का पोषण करता है। वृक्षादि भोजन निर्माण की प्रक्रिया (प्रकाश संश्लेषण) में कार्बनडाईऑक्साइड (CO_2) का ही उपयोग करते हैं। वायु अर्थात् मरुत् के बल से ही बीजांकुर धरती की सतह को फोड़ कर प्रकट होता है। इसी प्रकार वाक्-व्यवहार भी वायु से ही सिद्ध होता है। जब चेतनतत्व का ज्ञान-तत्व से सम्पर्क होता है, तब वह अपने अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति की इच्छा से मन को प्रेरित करता है, मन शारीरिक शक्ति (जठराग्नि) को प्रेरित करता है और जठराग्नि प्राणवायु को प्रेरित

१. निरुक्त- (११/२) मरुतोमितराविणो वा, मितरोचिनो वा, महद् द्रवन्तीति वा।
२. ऋग्वेद - १/३७/१, स्वामी दयानन्द भाष्य। ३. वही- १/३७ ४. वही- १/३८/४
५. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानंद वल्ली, प्रथम अनुवाक।
६. अथर्ववेद- (११/४/१५) प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते। ७. वही
८. ऋग्वेद- (१/३७/२) ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः।

करता है, प्राण वायु फेफड़े में संचरित होता हुआ उच्चारण अवयवों के विभिन्न स्थानों पर आघात करता है, जिससे ध्वनि की उत्पत्ति होती है[९] और इन ध्वनियों का सुनना भी वायु से ही संभव होता है।

शरीर में जितनी रसादि की प्रतीति होती है, वह सब वायु के संयोग से ही होता है।[१०] रुधिर में विद्यमान हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन से संयुक्त होकर ऑक्सीहीमोग्लोबिन बनाता है। यह ऑक्सीहीमोग्लोबिन रक्त परिसंचरण द्वारा शरीर की विभिन्न कोशिकाओं में पहुंचता है। इसी से प्राणविद्या और वायु के विकारों को ठीक-ठीक जानने वाले आनन्दपूर्वक आयु भोगते हैं।[११] ऋग्वेद में वर्णन है कि प्राणवायु की विद्या को जानने वाला मनुष्य युक्तिपूर्वक आहार-विहार कर वायुमार्ग को अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और सम्पूर्ण अवस्था को भोगकर सुख से अपने शरीर को छोड़ता है।[१२] प्राणरूप वायु से ही जीवन होता है। जब यह प्राणवायु शरीर छोड़ता है, तब मृत्यु होती है। वैदिक मंत्र का वचन है कि पवन जलों के अवयवों को कठिन कर सघनाकार मेघ से उत्पन्न बिजली से उन मेघों के अवयवों को छिन्न-भिन्न कर और पृथिवी में गिराकर जलों से स्निग्ध करके अनेक वनस्पति, औषधी आदि समूहों को उत्पन्न करते हैं।[१३] वायु के घटक जैसे- नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि पौधों के लिए पोषक तत्व का कार्य करते हैं। अथर्ववेद में वर्णन है कि मेघों के माध्यम से औषधियां पोषक तत्व प्राप्त कर तेजस्वी हो जाती हैं, और विविध प्रकार से विस्तार प्राप्त करती हैं।[१४]

इस प्रकार मरुत्सूक्त में वायु के गुणों के साम्य से समूह, समाज या राष्ट्र के नेता से लेकर सामान्य-जन तक के सद्कार्यों का प्रवचन हुआ है। जिस प्रकार वायु मेघों को इधर-उधर घुमाकर समान रूप से बरसाता है, और कहीं भी न्यूनता या आधिक्य नहीं रहने पाता, उसी प्रकार समूह या राष्ट्र के नेता का कर्त्तव्य है कि वह समाज में आर्थिक व सामाजिक लाभों के समान विभाजन को सुनिश्चित करे।[१५]

सूक्त के अन्त में वैदिक ऋषि घोरपुत्र कण्व इच्छा व्यक्त करते हैं कि सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे वेद, विद्वानों और ईश्वर के विरोधियों को अपने विद्या पराक्रम से जीत कर वेदविद्या विद्वान्-युक्त राज्य का सम्पादन करें।[१६] साथ ही, ऋषि की कामना है कि जैसे- पवन, सूर्य, बिजली आदि वर्षा करके सब प्राणियों के सुख के लिए अनेक प्रकार के फल, पत्र, पुष्प, अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग भी सब मनुष्यमात्र को वेदविद्या देकर उत्तम सुखों का निरन्तर सम्पादन करें।[१७]

-शोधछात्र, वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड आई.एस. (पी.यू.) साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

९. पाणिनीय शिक्षा, श्लोक संख्या ६ व ७
१०. ऋग्वेद- (१/३७/५) जम्भे रसस्य वावृधे।
११. वही- (१/३७/१५) अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे।
१२. वही- (१/३८/५) मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप।।
१३. वही- (१/३८/९) दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति।।
१४. अथर्ववेद- (११/४/३) यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः। प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽयो बह्वी वि जायन्ते।
१५. ऋग्वेद- (१/३७/१२) मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीरँचुच्यवीतन।
१६. वही- (१/३९/१०) असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः। ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम्।।
१७. वही- (१/३९/९) असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः। असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः।।

गंगा का धार्मिक वैशिष्ट्य

– श्रीमती टीना वैद

भारतीय संस्कृति की प्रतीक गंगा नदी हर भारतीय के रोम-रोम में, श्वास-प्रश्वास में विराजमान है। ऐसा शायद ही कोई भारतीय होगा, जिसके मन में गंगा का नाम-स्मरण करने पर भक्ति की तरंगें हिलोरें न लेती हों। जितनी श्रद्धा, भक्ति एवं आस्था इस नदी के प्रति है, विश्व की किसी भी नदी के प्रति ऐसा भक्तिभाव नहीं है। पतितपावनी, कलिमलहारिणी, मोक्षदायिनी आदि विशेषणों से मण्डित इस नदी का स्थान पुण्यतोया नदियों में सर्वोपरि है। तीनों लोकों में पूजनीय इस नदी का उद्गम उत्तराखण्ड के प. कुमाऊँ क्षेत्र में टेहरी गढ़वाल जिले में समुद्र सतह से लगभग ७०१६ मीटर ऊँचाई पर स्थित गंगोत्री हिमनद से २९ कि.मी. दूरी पर गोमुख से हुआ। उद्गम-स्थल पर गंगा का प्रवाह बहुत ही छोटा है, किन्तु आगे वह तीव्रतर होता चला जाता है। अनेक छोटी-बड़ी नदियों को अपने में समाहित करके तटवर्ती अनेक शहरों को पावन करती हुई लगभग २५२५ कि. मी. की यात्रा कर गंगा स्वयं को गंगासागर (बंगाल की खाड़ी) में विलीन कर देती है।

धार्मिक दृष्टिकोण से गंगा का महत्त्व अतुलनीय है। गंगा का सान्निध्य इतना चमत्कारी है कि इसके दर्शन-स्पर्श, स्नान-पान और कीर्तनमात्र से ही जन्म-मरण के बन्धन से मनुष्य मुक्त हो जाता है और अपनी सात पीढियों का भी उद्धार कर देता है।[१] कहा भी गया है कि गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है।[२] भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भगवद्गीता में गंगा को अपना स्वरूप बताया है।[३]

नदियों में गंगा ही सर्वश्रेष्ठ कही गई है। सहस्रों योजन दूर से भी 'गंगा' का नामोच्चारण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य को विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।[४] 'गंगा' इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कलंकों को नष्ट करने वाला, समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला, कल्याणकारी है।[५] गंगा नाम का स्मरण करते हुए मनुष्य यदि अपने प्राणों का त्याग करता है तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है।[६] यह गंगा का धार्मिक महत्त्व ही है कि आज मृत्युशय्या पर पड़े मनुष्य के मुख में गंगा-जल डालने का विधान है क्योंकि जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिये गंगा की विशेष महिमा है। अन्तिम समय में गंगा का एक बिन्दु-जल पीने पर भी परमपद की प्राप्ति होती है।[७] भारतीयों की धार्मिक अवधारणाओं में गंगा नदी नहीं अपितु देवी के रूप में निरूपित है। भारतीयों में यह मान्यता है कि गंगा में स्नान करने से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसा करके मनुष्य अपनी सात नीचे की और सात ऊपर की पीढ़ियों को पवित्र करता है।[८]

१. महाभा. वनपर्व- ८५/९३ २. वही, वनपर्व- ८५/९६ ३. गीता- १०/३१
४. ब्रह्मपुराण- १७५/८२ ५. वही, १७५/८० ६. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण- १०/८२
७. पद्म पुराण (क्रियायोग सारखण्ड) ७१/७२ ८. बृहन्नारदीय पुराण- ३९/२३

लोगों की गंगा के प्रति धार्मिक आस्था का ही प्रतीक है कि ब्रह्मघाती, गुरुघाती, गोहत्या तथा महापापी मनुष्य भी गंगाजल के स्पर्श से पवित्र हो जाता है।[९] जीवनपर्यन्त पाप के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति भी अन्तिम समय में गंगा के सेवन से परम गति को प्राप्त हो जाता है।[१०] अग्निपुराण, पद्मपुराण में भी मनुष्यमात्र के लिए गंगा को ही परम गति बताया गया है।[११] जो गति निरन्तर योगाभ्यास करने वाला योगीपुरुष प्राप्त नहीं करता वह गति गंगा के समीप मृत्यु को प्राप्त मनुष्य पा लेता है।[१२] गंगा स्नान से यश, राज्य पुण्यादि की प्राप्ति कर, अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[१३] गंगा महत्त्व का वर्णन करने में चतुरानन भी सक्षम नहीं हैं, फिर एकानन (मनुष्य) की तो बात ही क्या है- 'गङ्गाकृत्स्नगुणं वक्तुं न शक्तश् चतुरानन:।[१४] जिस प्रकार माता बालक को जन्म देकर उस के मल आदि को साफ़ करती है, उसी प्रकार गङ्गा भी अपने गोद में लेकर साँसारिक लोगों का मलापहरण करती है।[१५]

गंगा पृथ्वी में मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवताओं को तारती है, इसीलिए इसे 'त्रिपथगा' कहते हैं।[१६] पुराणों के अनुसार गंगा तीरवासी जनपद, पशु, पक्षी, कीट-पतंग और स्थावर-जंगम सभी धन्य हैं।[१७]

गंगा को स्वर्ग-मोक्षप्रदा- 'स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा'[१८] भुक्ति-मुक्तिप्रदा- 'भुक्ति-मुक्तिप्रदा गङ्गा'[१९] कहा गया है। गंगा ही संसारप्रिया है- 'गङ्गया लोककान्तया'।[२०] भगवान् हरि का कहना है कि मेरा गङ्गामयी जलरूप समस्त कामनाओं और अर्थों का सिद्धिदायक है- 'तदेव मे परं रूपं सर्वकामार्थसिद्धिदम्'।[२१] भगवान् शिव ने भी गङ्गाजल को साक्षात् परब्रह्म स्वरूप कहा है।[२२] उस धारा के दर्शन मात्र से सब प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं- 'यस्या दर्शनमात्रेण सर्वै: पापै: प्रमुच्यते'[२३]। समस्त तीर्थों का पुण्य गङ्गा की सोलहवीं कला के बराबर नहीं है।[२४] गङ्गा की अचल भक्ति मनुष्यों के लिए दुर्लभ है।[२५] भगवान् विष्णु भी कई वर्षों में गंगा का महत्त्व वर्णन करने में सक्षम नहीं हैं।[२६]

गङ्गा ही सांसारिक पाशछेदी है।[२७] वह मेषादि मासों में अखिल जगत् को पवित्र करती है- 'मेषादिषु च मासेषु पावयत्यखिलं जगत्।'[२८] गंगा का नाम पापारण्य के लिए वनाग्नि तथा संसार-रोगनाशक है, इसलिए उस का यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए।[२९]

'कलौ गङ्गाविशिष्यते'[३०] कलियुग में गङ्गा ही विशिष्ट है। त्रिलोक में तीन करोड़ पचास लाख तीर्थ हैं। स्वर्ग, भूमि, आकाश सर्वत्र जाह्नवी व्याप्त है।[३१]

मनुष्यों के कोटि जन्मार्जित पाप भी गङ्गा के

---

९. बृहन्तारयीय पुराण- ३९/२६ १०. वही, ३८/१०
११. (क) गतिर्गङ्गा तु भूतानों। अग्निपुराण- ११०/२ (ख) गतिर्मनुष्यमात्रस्यगङ्गैव परमा गति:। पद्मपुराण, प्रथम खण्ड श्लोक २५
१२. वही, श्लोक-३६ १३. पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड- ६४/८ १४. वही, ६४/१९ १५. वही, ६४/२७
१६. वही, ६४/५२,५३ १७. वही, ६४/७० १८. वही, ६४/३८ १९. वही, ६४/३९
२०. वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड, ४१/२१ २१. केदारखण्ड, २/४७ २२. वही, २/४९
२३. वही, २/५४ २४. बृहत्तारदीय पुराण, ६/११ २५. वही, ६/२३ २६. वही, ६/२६ २७. वही, ६/२८
२८. वही, ६/३१ २९. वही, ६/६० ३०. कूर्मपुराण-पूर्वभाग, ३५/३६ ३१. वही, ३७/७

वायु स्पर्श से ही नष्ट हो जाते हैं-

कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः।
गङ्गाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्।।[३२]

गङ्गा के सदृश कोई तीर्थ नहीं है- 'न गङ्गा सदृशं तीर्थम्।[३३] जहां गङ्गा बहती है, वही उत्तम देश है और वही श्रेष्ठ तपोवन है। गङ्गा तटवर्ती प्रान्त को सिद्धक्षेत्र समझना चाहिए।[३४]

वस्तुतः गंगा नदी नहीं; अपितु हमारी आस्था, निष्ठा एवं श्रद्धा का दिव्य प्रवाह है। गंगा अपने आँचल में आर्यावर्त का वैभवशाली, समृद्ध इतिहास और जीवन्त संस्कृति समेटे हुए है। गंगा भारतीय जीवन का अमृत-प्रवाह है और भारतीय संस्कृति का प्राण है। भारत का धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, जीवन, मृत्यु सभी कुछ गंगा से सम्पृक्त है। गंगा हमारे प्रबल पुरुषार्थ और अखण्ड विश्वास की साक्षी है। गंगा हमारी दैहिक शुद्धता एवं आत्मिक चेतना का केन्द्र है। पुण्यसलिला गंगा की सतत-प्रवाही पीयूषधारा भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष आधार एवं जीवन्त प्रेरणा का अजस्र स्रोत रही है। गंगा हमारे जीवन-मूल्यों का मानक है। भागीरथी की अमृतमयी धारा प्रत्येक के लिये मोक्ष का साधन है। सर्वत्र गङ्गा ही पवित्र है। अपनी इस विविधता से वह आज भी हिम-संहति से आवृत्त केदार-हिमालय में तापसों की दैनिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति कर रही है। इन्हीं आश्चर्यजनक कारणों से वह आदिकाल से भारतीय जन-जीवन में श्रद्धेय और आराध्य रही है।

-शोधार्थी, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

३२. देवीभागवत- ९,११-२३ ३३. महाभारत-वनपर्व- ८५/९६ ३४. वही, ८५/९७

दुःखेन खिद्येन्न सुखेन माद्येत्
समेन वर्तेत स धीरधर्मा।
दिष्टं बलीयः समवेक्ष्य बुद्ध्या
न सज्जते चात्र भृशं मनुष्यः।।

महाभा. आदिपर्व. ८९.१२

जो दुःख के आने पर दुःखी तथा सुख मिलने पर सुखी नहीं होता। सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करता है, वही धीर कहलाता है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि की अपेक्षा भाग्य को बलवान् मानते हुए किसी भी वस्तु में अधिक आसक्त नहीं होते।

संस्थान-समाचार

श्री शशि कपूर २७५, सैक्टर-१४, गुड़गांव (हरियाणा)	११००/-	**श्री प्रभुदयाल बुधराम जिंदल चेरिटेबल ट्रस्ट बुधराम एण्ड कंपनी** ७, न्यू-सब्जी मण्डी, होशियारपुर।	२५००/-
मैं भुवालिका जनकल्याण ट्रस्ट तोष हाऊस, पी ३२/३३, इंडिया ऐक्सचेंज प्लेस, कोलकाता।	१०००/-	**ट्रस्टी श्री भागमल महाजन चेरिटेबल ट्रस्ट** महाजन कम्पाऊँड, एल.एस.वी. मार्ग, विखरौली, मुम्बई।	३०००/-
पराशर फैमिली होशियारपुर।	४०००/-		

हवन-यज्ञ-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

अमृतवाणी-पाठ-

जुलाई 2018 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में ही परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

धन्यवाद-

श्रीमती स्नेह जैन (गढ़ी गेट, भाग्यतारा) होशियारपुर की ओर से संस्थान के कम्प्यूटर सैंटर के लिए १५ कुर्सियां (लगभग २४,०००) भेंट की गईं। आप उदारता से संस्थान की समय-समय पर सहायता करती रहती हैं। संस्थान आपकी इस सहायता के लिए आपका धन्यवाद करता है तथा आशा करता है कि आप आगे भी इसी तरह संस्थान की सहायता करती रहेंगी।

सेवानिवृत्ति-

पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर से श्री नारायण सिंह (चौकीदार) गत ३१-५-२०१८ को लगभग २० वर्ष की सेवा के बाद रिटायर्ड हो गये। आपने अपनी विदाई पार्टी में संस्थान में वर्तमान सभी विभागों (वी.वी.आर.आई., बैंक, डाकखाना, म्यूजियम) के कर्मचारियों को अपनी ओर से प्रीतिभोज का प्रबन्ध किया।

आपने इस संस्थान में जितने वर्ष कार्य किया उसकी सभी ने भरपूर प्रशंसा करते हुए कहा कि श्री नारायण सिंह एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। वी.वी.आर.आई. तथा पंजाब विश्वविद्यालय पटल के कर्मचारियों के साथ आपका बहुत अच्छा सम्बन्ध था। आपके कार्य की जहां पंजाब विश्वविद्यालय पटल के प्राध्यापक-वर्ग ने संस्तुति की है, वहीं विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के संचालक ने भी उनकी कर्तव्यनिष्ठा की प्रशंसा करते हुए उनकी दीर्घ आयु की कामना की तथा उन्हें और उनके परिवार को आशीर्वाद दिया।

शोक-समाचार (छपते-छपते)

संस्थान को अभी-अभी प्राप्त सूचना के अनुसार संस्थान की कार्यकारिणी समिति के आजीवन वरिष्ठ सदस्य प्रो. (डॉ.) आर.डी. आनन्द के बड़े भाई डॉ. कृष्ण कुमार आनन्द जी का १२ जुलाई २०१८ को चण्डीगढ़ में देहान्त हो गया।

आप पंजाब यूनिवर्सिटी के पोलिटिकल साइंस विभाग से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होने के बाद डॉ. आर. डी. आनन्द के साथ ही पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट चण्डीगढ़ में वकालत का कार्य करते थे। आप अपने विषय (पोलिटिकल साइंस) के विद्वान् होने के बावजूद भी कानून के क्षेत्र में भी विशेषता रखने वाले व्यक्ति थे। आप एक मिलनसार स्वभाव के सज्जन व्यक्ति थे। आप के जाने से एक अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति की कमी महसूस की जाएगी। आपके जाने से आपके परिवार तथा संबन्धियों को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना संभव नहीं। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों को इस सूचना से अत्यन्त दु:ख हुआ और सभी की शोकग्रस्त परिवार के प्रति समवेदना है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति दे तथा उनके परिवार को इस असह्य दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

विविध-समाचार

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में
भारत की राजधानी दिल्ली में विश्वभर के आर्यों का महाकुंभ

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन 2018

दिल्ली (भारत)

25 से 28 अक्टूबर, 2018

तदनुसार कार्तिक कृष्ण १, २, ३, ४ विक्रमी संवत् २०७५

सम्मेलन स्थल

स्वर्ण जयंती पार्क, रोहिणी, सैक्टर-10, दिल्ली, भारत

महासम्मेलन में आप सभी इष्ट मित्रों व परिवार सहित सादर आमंत्रित हैं।
संगठनात्मक एकताहेतु लाखों की संख्या में पधारकर कार्यक्रम को सफल बनायें।

सुन्दर व्यवस्था हेतु सम्मेलन में आने से पूर्व महासम्मेलन कार्यालय में अपना पंजीकरण अवश्य करा लें। पंजीकरण वैबसाईट पर भी किया जा सकता है। आगंतुक महानुभावों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था आयोजकों की ओर से की जाएगी।

अपील:- महासम्मेलन की सफलता हेतु 'दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा-महासम्मेलन-2018' के नाम से क्रास चैक/ड्राफ्ट सम्मेलन कार्यालय के पते पर भेजने की कृपा करें।

महासम्मेलन हेतु दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा को दिया गया दान/सहयोग आयकर अधिनियम की धारा 80G के अन्तर्गत आयकर छूट प्राप्त है।

सम्मेलन कार्यालय:

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-1 दूरभाष: 91-9540029044

E-mail : aryasabha@yahoo.com, Website : www.aryamahasammelan.org, www.thearyasamaj.org

thearyasamaj 9540045898

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०७-२०१८ को प्रकाशित।